श्रीहरिः

स्वदेश-सङ्गीत

लेखक

मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशक

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

१९८२ वि०

प्रथम संस्करण]

[मूल्य ||৶)

वक्तव्य

गुप्त जी की स्वदेश-सम्बन्धिनी फुटकर कविताओं का यह सङ्ग्रह प्रकाशित किया जाता है। इनमें से अधिकांश कविताएँ भिन्न भिन्न पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ ऐसी भी हैं जो अब तक कहीं नहीं छपीं।

ये कविताएँ समय समय पर लिखी गईं हैं। अतएव कुछ कविताएँ एक कालीन होने पर भी ऐतिहासिक महत्व रखती हैं।

आशा है भारत-भारती के समान यह पुस्तक भी हिन्दी प्रेमियों द्वारा अपनाई जायगी।

प्रकाशक

सूची

श्रीगणेशाय नमः

स्वदेश-सङ्गीत

निवेदन

राम, तुम्हें यह देश न भूले,
धाम-धरा-धन जाय भले ही,
यह अपना उद्देश न भूले।
निज भाषा, निज भाव न भूले,
निज भूषा, निज वेश न भूले।
प्रभो, तुम्हें भी सिन्धु पार से
सीता का सन्देश न भूले।

विनय

आवें ईश ! ऐसे योग—
हिल मिल तुम्हारी ओर होवें अग्रसर हम लोग ॥
जिन दिव्य भावों का करें अनुभव तथा उपयोग—
उनको स्वभाषा में भरें हम सब करें जो भोग ॥
विज्ञान के हित, ज्ञान के हित सब करें उद्योग ।
स्वच्छन्द परमानन्द पावें मेट कर भव-रोग ॥

प्रार्थना

दयानिधे, निज दया दिखा कर
एक बार फिर हमें जगा दो।
धर्म्म-नीति की रीति सिखा कर
प्रीति-दान कर भीति भगा दो ॥

समय-सिन्धु चञ्चल है भारी,
कर्णधार, हो कृपा तुम्हारी;
भार-भरी है तरी हमारी,
एक बार हो न डगमगा दो ॥

ह्रास मिटे अब, फिर विकास हो;
सभी गुणों का स्थिर निवास हो;
रुचिर शान्ति का चिर विलास हो;
विश्व-प्रेम में हमें पगा दो ॥

राम-रूप का शील-सत्व दो,
सेतुबन्ध-रचना-महत्व दो;
श्याम-रूप का रास-तत्व दो,
कुरुक्षेत्र का सु-गीत गा दो ॥

ज्ञान-मार्ग की बात बता दो;
कर्म्म-मार्ग का पूर्ण पता दो;
काल-चक्र की चाल जता दो;
भक्ति-मार्ग में हमें लगा दो ॥

फूट फैल कर फूट रही है;
उद्यमता सिर कूट रही है;
और अलसता लूट रही है;
न आप से ही हमें ठगा दो ॥

रहे न यह जड़ता जीवन में;
जागरूकता हो जन जन में;
तन में बल, साहस हो मन में;
नई ज्योतियाँ सु जगमगा दो ॥

ऊषा

हरे, बहुत दिन तक सहा अन्धकार का भार।
अब कब होगा देश में ऊषामय अवतार ?

ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

अब यह मिटे अविद्या-रात,
रुज-रजनीचर करें न घात,
दरसे चारों ओर प्रभात,
तम का पता न रहने पावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

फैले अहा ! अरुण अनुराग,
चमके फिर प्राची का भाग,
जागें सब आलस को त्याग,
जड़ता की निद्रा मिट जावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

गावें द्विज-नेता वह गान—
जिससे हो जावे उत्थान,
गूँजे आत्मतत्व की तान,

सत्यालोक सुमार्ग दिखावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे॥

पाकर हम सब पावन योग,
कर के नित्य नये उद्योग,
भोगें मन मानें सुख भोग,
मानस-मधुप-मुक्त हो गावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे॥

आरोग्य-याचना

हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

तेरे हाथों में है अक्षय सरस-सुधा से भरा घड़ा,
और देश यह मरे पड़ा !
हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

इसको अमृत पिलादे तू,
मरने न दे, जिलादे तू,
देवलोक के सदृश दयामय फिर यह भी तो तेरा है;
तू भी इसका मेरा है;
हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

मस्तक मानों लटक गया,
कण्ठ रुका; कफ अटक गया,
आँख फिर-सी गईं सिमिट कर, दया-दृष्टि दरसा दे तू;
सूखे को सरसादे तू;

हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

दुख का भी कुछ भान नहीं,
निज तक का भी ज्ञान नहीं,
काम नहीं देगा अब इस पर कोई अल्प उपाय कभी,
कर दे कायाकल्प अभी;
हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

नाड़ी में कुछ सार नहीं,
शोणित में सञ्चार नहीं,
कब से यह अचेत है ऐसा, कुछ अन्तर का शोधन दे,
मोह मिटा, उद्बोधन दे;
हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

इसको नूतन-जीवन दे,
फिर से तन, मन, जन, धन, दे;
पहले खड़ा किया था जैसा फिर भी इसे खड़ा कर दे,
बल दे और बड़ा कर दे;
हरि, हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !

आह्वान

आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा
हम में तू अपने भक्ति-भाव से भा जा ॥

इस जीवन में निज नवस्फूर्ति सरसाजा,
बन्धन-समूह में मुक्ति-मूर्ति दरसाजा ।
नीरस वसुधा पर सुधा-धार बरसाजा,
तीनों तापों को तीन वार तरसाजा;
खोये अपने हम पुत्र जनों को पा जा ।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा

हम भूल जायँ माँ, तू न भूल जा, आ जा,
इस दैन्य दैत्य पर शूल हूल जा, आ जा ।
है लोल हृदय हिण्डोल, झूल जा, आ जा,
सुखमूलमयी शिव-लता, फूल जा, आ जा;
तू निज गौरव के गीत आप ही गा जा ।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा ।

भवचक्र-चालिनी, लोक-लालिनी, आ जा,
ऐश्वर्य्यशालिनी, विश्वपालिनी, आ जा ।

ओ अघक्षालिनी, भव्यमालिनी, आ जा,
काली करालिनी, मुण्डमालिनी, आ जा;
इस पुण्यभूमि पर पूर्ण छटा से छा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा॥

ओ शोकहारिणी, लोकतारिणी, आ जा,
ओ धर्म्मधारिणी, कर्म्मकारिणी, आ जा।
ओ भय निवारिणी, विजयसारिणी, आ जा,
ओ भव विहारिणी, विभवचारिणी, आ जा;
ये हीन भाव के ढेर ढूह सब ढा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा॥

घन अन्धकार में ज्योति जगा जा, आ जा,
भूले भटकों को पार लगा जा, आ जा।
निज प्रेम-पुण्य में हमें पगा जा, आ जा,
मरने तक का भय दूर भगा जा, आ जा;
सब साम्य भाव से रहें रङ्क क्या राजा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा॥

भारतवर्ष

मस्तक ऊँचा हुआ मही का, धन्य हिमालय का उत्कर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष॥

हरा-भरा यह देश बना कर विधि ने रवि का मुकुट दिया,
पाकर प्रथम प्रकाश जगत ने इसका ही अनुसरण किया।
प्रभु ने स्वयं 'पुण्य-भू' कह कर यहाँ पूर्ण अवतार लिया,
देवों ने रज सिर पर रक्खी, दैत्यों का हिल गया हिया !
लेखा श्रेष्ट इसे शिष्टों ने, दुष्टों ने देखा दुर्द्धर्ष !
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष॥

अङ्कित-सी आदर्श मूर्ति है सरयू के तट में अब भी,
गूँज रही है मोहनमुरली ब्रज-वंशीवट में अब भी।
लिखा बुद्ध-निर्वाण-मन्त्र जयपाणि-केतुपट में अब भी,
महावीर की दया प्रकट है माता के घट में अब भी।
मिली स्वर्ण-लङ्का मिट्टी में, यदि हमको आ गया अमर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष॥

आर्य, अमृत सन्तान, सत्य का रखते हैं हम पक्ष यहाँ,
दोनों लोक बनाने वाले कहलाते हैं दक्ष यहाँ।

शान्ति पूर्ण शुचि तपोवनों में हुए तत्त्व प्रत्यक्ष यहाँ,
लक्ष बन्धनों में भी अपना रहा मुक्ति ही लक्ष यहाँ।
जीवन और मरण का जग ने देखा यहाँ सफल संघर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष॥

मलय पवन सेवन करके हम नन्दनवन बिसराते हैं,
हव्य भोग के लिए यहाँ पर अमर लोग भी आते हैं!
मरते समय हमें गङ्गाजल देना, याद दिलाते हैं,
वहाँ मिले न मिले फिर ऐसा अमृत, जहाँ हम जाते हैं!
कर्म हेतु इस धर्मभूमि पर लें फिर फिर हम जन्म सहर्ष
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष॥

मेरा देश

बलिहारी तेरा वरवेश,
मेरे भारत, मेरे देश !

बाहर मुकुट-विभूषित भाल,
भीतर जटाजूट का जाल।
ऊपर नभ, नीचे पाताल,
और बीच में तू प्रणपाल ॥

बन्धन में भी मुक्ति निवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

कभी मुरजमय वीणावाद,
कभी स्वरों से साम-निनाद।
कभी गगनचुम्बी प्रासाद,
कभी कुटी में ही आह्लाद ॥

नहीं कहीं भी भय का लेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

है तेरी कृति में विक्रान्ति,
भरी प्रकृति में अविचल शान्ति।

फटक नहीं सकती है भ्रान्ति,
आँखों में है अक्षय कान्ति ॥
आत्मा में है अज अखिलेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

सरस्वती का तुझ में वास,
लक्ष्मी का भी विपुल-विलास।
प्रिया प्रकृति का पूर्ण विकास,
फिर भी है तू आप उदास ॥
हे गिरीश, हे अम्बरकेश !
मेरे भारत ! मेरे देश !

मस्तक में रखता है ज्ञान,
भक्ति-पूर्ण मानस में ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान,
है सत् चित् आनन्दनिधान ॥
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

इधर विविध लीला विस्तार,
उधर गुणों का भी परिहार।
जिधर देखिये पूर्णाकार,
किधर कहें हम तेरा द्वार ?

हृदय कहीं से करे प्रवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

तन से सब भोगों का भोग,
मन से महा अलौकिक योग।
पहले संग्रह का संयोग,
स्वयं त्याग का फिर उद्योग !
अद्भुत है तेरा उद्देश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

बन कर तू चिर साधन धाम,
हुआ स्वयं ही आत्माराम।
लिया नहीं तब तक विश्राम—
जब तक पूरा किया न काम ॥
दिये तुझी ने सब उपदेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

स्वर्ग-सहोदर

जितने गुणसागर नागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं—
अब यद्यपि दुर्बल, आरत है,
पर भारत के सम भारत है ॥

बसते वसुधा पर देश कई,
जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर है किसमें गुरुता इतनी—
भरपूर भरी इसमें जितनी ?

गुण गुम्फित हैं इसमें इतने—
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने।
किसकी इतनी महिमा वर है ?
इस पै सब विश्व निछावर है ॥

जन तीस करोड़ यहाँ गिन के—
कर साठ करोड़ हुए जिनके।
जग में वह कार्य्य मिला किसको,
यह देश न साध सके जिसको ?

उपजें सब अन्न सदा जिसमें—
अचला अति विस्तृत है इसमें।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ,
समझो सब की भवभूमि यहाँ॥

प्रिय दृश्य अपार निहार नये,
छवि-वर्णन में कवि हार गये।
उपमा इसकी न कहीं पर है,
धरणी-घर ईश-धरोहर है!

जल-वायु महा हितकारक है,
रुजहारक, स्वास्थ्य-प्रसारक है।
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है,
क्रम षड्ऋतु का अति उत्तम है॥

सुखकारक ऊपर श्याम घटा,
दुखहारक भू पर शस्य-छटा।
दिन में रवि लोक-प्रकाशक है,
निशि में शशि ताप-विनाशक है॥

छविमान कहीं पर खेत हरे,
वन-बाग़ कहीं फल-फूल-भरे।
गिरि तुङ्ग कहीं मन मोह रहे,
सब ओर जलाशय सोह रहे॥

रतनाकर की रसना पहने,
बहु पुष्प-समूह बने गहने।
परिधान किये तृण-चीर हरा,
अति सुन्दर है यह दिव्य धरा॥

बहु चम्पक, कुन्द, कदम्ब बड़े,
बकुलादि अनन्त अशोक खड़े।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले,
अति चित्र-विचित्र प्रसून खिले॥

मृदु१, बेर, मुखप्रिय२, जम्बु फले,
कदली, शहतूत, अनार भले।
फलराज रसाल३ समान कहीं-
फल और मनोहर एक नहीं॥

कृषि केसर की भरपूर यहाँ,
मृगगन्ध४, कुसुम्भ, कपूर यहाँ।
समझो मधु का बस कोष इसे,
रस हैं इतने उपलब्ध किसे?

अमृतोपम अद्भुत-शक्तिमयी-
जिनकी सु-गुणश्रुति नित्य नई।
इसमें बहु ओषधियाँ खिलतीं,
जल में, थल में, तल में मिलतीं!

१—अमरूद, २—नारङ्गी ३—आम, ४—कस्तूरी,

कृषि में इसने जग जीत लिया,
    किसने इस-सा व्यवसाय किया ?
सन, रेशम, ऊन, कपास अहो !
    उपजा इतना किस ठौर कहो ?

अवनी-उर में बहु रत्न भरे,
    कनकादिक धातु समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है-
    जिसका न यहाँ पर उद्गम है ?

कवि, पण्डित, वीर, उदार यहाँ,
    प्रकटे मुनि धीर अपार यहाँ।
लख के जिनकी गति के मग को-
    गुरु ज्ञान सदा मिलता जग को ॥

बहु भाँति बसे पुर-ग्राम घने,
    अब भी नभचुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण-विशीर्ण पड़े,
    पर पूर्वदशास्मृति चिन्ह खड़े ॥

अब भी वन में मिल के चरते-
    बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इन सा उपकारक जीव नहीं,
    पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं ॥

मद-मत्त कहीं गज झूम रहे,

मुद मान कहीं मृग घूम रहे।

शुक, चातक, कोकिल बोल रहे,

कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे॥

शतपत्र कहीं पर फूल रहे,

मधु-मुग्ध मधुव्रत भूल रहे।

कल हंस कहीं रव हैं करते,

जल-जीव प्रमोद भरे तरते॥

शुचि शीतल-मन्द सुगन्ध-सनी-

फिरती पवन प्रिय नारि बनी।

हरती सब का श्रम सेवन में,

भरती सुख है तन में, मन में॥

जगती तल में वह देश कहाँ-

निकले गिरि गन्ध विशेष जहाँ?

इसमें मलयाचल शोभन है—

घन चन्दन का जिसमें वन है!

सिर है गिरिराज अहो! इसका,

इस भाँति महत्व कहो, किसका?

तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा-

विभवालय है वह किन्तु बड़ा॥

वर विष्णुपदी[१] बहती इसमें,
रवि की तनया[२] रहती इसमें।
अघनाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर शान्ति जहाँ॥

क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी,
यह था अति उन्नत, सभ्य तभी।
बहु देश समुन्नत जो अब हैं-
शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं॥

शुचि शौर्य्य-कथा इतनी किसकी—
जग-विश्रुत है जितनी इसकी ?
अमरों तक का यह मित्र रहा,
अति दिव्य चरित्र, पवित्र रहा॥

ध्रुव धर्म्ममयी इसकी क्षमता—
रखती न कहीं अपनी समता।
गरिमा इसकी न कहाँ पर है ?
किस से न लिया इसने कर है ?

श्रुति, शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियाँ,
बहु अन्य सुधी-गण की कृतियाँ।
नय-नीति-नियन्त्रित तन्त्र बने,
सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने॥

१—गङ्गा, २—यमुना।

कविता, बल नाट्य, सुशिल्पकला,
इस भाँति बढ़ी किस ठौर भला ?
किस पै न रहा इसका कर है ?
किस सद्गुण का न यहाँ घर है ?

सुख-मूल सनातन धर्म्म रहा,
अनुकूल अलौकिक कर्म रहा।
वर वृत्त बढ़े इतने किसके ?
नर क्या, सुर भी वश थे इसके !

सुख का सब साधन है इसमें,
भरपूर भरा धन है इसमें।
पर हा ! अब योग्य रहे न हमीं,
दुख की जड़ है इस हेतु जमीं॥

सुन के इसकी सब पूर्व कथा,
उठती उर में अब घोर व्यथा।
इसमें इतना घृत-क्षीर बहा—
जितना न कहीं पर नीर रहा !

अब दीनदयालु ! दया करिये,
सब भाँति दरिद्र-दशा हरिये।
भरिये फिर वैभव नित्य नया,
चिरकाल हुआ सुख छूट गया॥

अवलम्ब न और कहीं इसको,
　　तजिये हरि, हाय ! नहीं इसको ।
खलता दुख-दैत्य महोदर है,
　　यह भारत 'स्वर्ग-सहोदर' है ॥

मातृभूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है;
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं;
वन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं;
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

मृतक समान अशक्त, विवश, आँखों को मीचे
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे;
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अङ्क में त्राण किया था,
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही।
तू क्यों न हमारी पूज्य हो ? मातृभूमि, माता मही !

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं;
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाये;

हम खेले-कूदे हर्ष युत जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में ?

पालन, पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षःस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही;
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो तुझी से तुझ पर सारे;
हे मातृभूमि, हम जब कभी शरण न तेरी पायँगे।
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायँगे ॥

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है;
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम भाव से सदा हमारा;
हे मातृभूमि, उपजें न जो तुझ से कृषि-अङ्कुर कभी।
तो तड़प तड़प कर जल मरें जठरानल में हम सभी ॥

पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हम से होगा ?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस, तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है;
फिर अन्त समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी।
हे मातृभूमि, यह अन्त में तुझ में ही मिल जायगी ॥

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता;
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता;
उन सब में तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्व है।
हे मातृभूमि, तेरे सदृश किसका महा महत्व है ?

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है;
षट्‌ऋतुओं का विविध दृश्य युत अद्‌भुत क्रम है,
हरयाली का फ़र्श नहीं मखमल से कम है;
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्रप्रकाश है।
हे मातृभूमि, दिन में तरणि करता तम का नाश है॥

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं,
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नों वाली;
जो आवश्यक होते हमें, मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि, वसुधा, धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं॥

दीख रही है कहीं दूर तक शैलश्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी;

नदियाँ पैर पखार रही हैं बन कर चेरी,
पुष्पों से तरु-राजि कर रहो पूजा तेरी;
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही।
हे मातृभूमि, किसका न तू सात्विक भाव बढ़ा रही ?

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयो, तू प्रेममयी है;
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है;
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है॥

आते ही उपकार याद हे माता ! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा;
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन होता है—तुझे उठा कर शीश-चढ़ावें;
वह शक्ति कहाँ, हा ! क्या करें, क्यों हम को लज्जा न हो ?
हम मातृभूमि, केवल तुझे शीश झुका सकते अहो !

कारण वश जब शोक-दाह से हम दहते हैं,
तब तुझ पर ही लोट लोट कर दुख सहते हैं।
पाखण्डी भी धूल चढ़ा कर तन में तेरी,
कहलाते हैं साधु, नहीं लगती है देरी;

इस तेरी ही शुचि धूलि में मातृभूमि, वह शक्ति है—
जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है !

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है;
तुझ को सारे जीव एक से ही प्यारे हैं,
कर्म्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं;
हे मातृभूमि, तेरे निकट सब का सम सम्बन्ध है।
जो भेद मानता वह अहो ! लोचनयुत भी अन्ध है ॥

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे;
लोट लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे;
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे।
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे ॥

———

शिक्षण

भय-रहित भव-सिन्धु तरना सीख ले कोई यहाँ।
विश्व में आकर विचरना सीख ले कोई यहाँ॥
ज्ञान पूर्वक, भक्ति पूर्वक कठिन कर्म्मक्षेत्र में,
चाहिए कैसे उतरना ? सीख ले कोई यहाँ।
मुक्ति तो है साथ ही हम सर्वदा स्वच्छन्द हैं,
वासना-बन्धन-कतरना सीख ले कोई यहाँ॥
कर्म्म हैं जितने सभी प्रभु नाम पर होते रहें,
एक मन से ध्यान धरना सीख ले कोई यहाँ॥
आपदा में, सम्पदा में, हर्ष में या शोक में,
चित्त को चञ्चल न करना सीख ले कोई यहाँ।
जानते हैं हम कि है आचार की सीमा कहाँ,
पुण्य के भाण्डार भरना सीख ले कोई यहाँ॥
त्याग में सर्वस्व क्या, उत्सर्ग करना आप को,
स्वार्थ से सर्वत्र डरना सीख ले कोई यहाँ।
ऋषि जनों की रीति थी-अपने लिए जीते न थे,
प्रेम में निर्मोह मरना सीख ले कोई यहाँ॥

ब्रह्मचर्य्याश्रम

ज्ञान हमारा ध्यान हमारा
मस्तक में, मन में था।
शम दम-साधन निगमाराधन
पुण्य तपोवन में था॥

उटज बने थे विटप घने थे
खग-मृग हिलेमिले थे।
कन्द-मूल-फल विमल नदी जल
सुरभित सुमन खिले थे॥

पवनालोडित गगनाक्रोडित
होम-धूम उठते थे।
सूर्य-सुधाकर कर फैला कर
चिबुक चूम उठते थे॥

शुद्ध कुशासन ऋषि का शासन
जो था परहित-रत था।
पूर्ण तितिक्षा सच्ची शिक्षा
ब्रह्मचर्य्य का व्रत था॥

शास्त्र-पाठ था अजब ठाठ था
नृप भी नत रहते थे।
सब विषयों पर प्रश्नोत्तर कर
सुनते थे, कहते थे ॥

वेद-गान वह सुधा-पान वह
देवों को भी भाता।
मेट ताप को स्वयं आप को
जीवन मुक्त बनाता ॥

सब प्रकाशमय सभी निरामय
शीलवान थे सच्चे।
एक देश के एक वेश के
एक पिता के बच्चे ॥

जहाँ भेद है वहाँ खेद है
हम सब में समता थी।
वर विनोद था मनोमोद था
मोह न था, ममता थी ॥

किसी छात्र पर न था शुल्क कर
गुरु भोजन भी देते।
वे थे त्यागी परम विरागी
बदले में क्या लेते ?

न कुछ सोच था न सङ्कोच था
न थीं जगत की घातें ।
कहाँ शोक था ? भिन्न लोक था
विद्या की थीं बातें ॥

ज्ञान-कर्म्म का भक्ति-धर्म्म का
बोध यहाँ होता था ।
तत्व तत्व का सत्य सत्व का
शोध यहाँ होता था ॥

यहीं पढ़े हम यहीं बढ़े हम
मति, गति बल पाया की ।
उलझी उलझी गाठें सुलझी
ब्रह्म, जीव, माया की ॥

वायु खींच कर नेत्र मींच कर
प्राणायाम बढ़ाते ।
योग-सिद्धि की आयुवृद्धि की
शिक्षा थे सब पाते ॥

वह पारायण हे नारायण !
अमर भाव भरता था ।
सारे संशय सारे भव-भय
छिन्न भिन्न करता था ॥

हे भारत, अब वे बातें सब
कहाँ दिखाई देतीं ?
चित्र-फलक पर झलक झलक कर
यहाँ दिखाई देतीं !

प्राचीन भारत

सुख सभी जिसको तुम ने दिये,
 त्रिविध रूप धरे जिसके लिये।
न कुछ वस्तु अलभ्य रही जहाँ,
 अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

न जिसमें जन एक दुखी रहा,
 सतत जो सब भाँति सुखी रहा।
कुशल-मङ्गल का गृह था जहाँ,
 अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुन पड़ा न अकाल जहाँ कभी,
 मुदित निर्भय थे रहते सभी।
विपुल था धन धान्य भरा जहाँ,
 अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

ऋतु विपर्यय था न हुआ कभी,
 अक्षत आयु प्रसन्न रहे सभी।
विवश थे मन [illegible] सदा जहाँ,
 अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सब मनुष्य जहाँ मतिमान थे,
सब विरोग तथा बलवान थे।
सब जितेन्द्रिय, सज्जन थे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

यदपि वर्ण-विभेद-विचार था,
पर परस्पर प्रेम अपार था।
कलहकारक द्वेष न था जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सदुपदेशक थे द्विज सत्क्रिय,
सुजन-रक्षक क्षत्रिय थे प्रिय।
विभव-वर्द्धक वैश्य रहे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सुकवि, शिल्पि, गुणी, नट, गायक,
कुशल कोविद, चित्र-विधायक।
सब असंख्यक थे मिलते जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

विपुल वाणिज-वृत्ति जहाँ बढ़ी,
समय के सिर उन्नति थी चढ़ी।
त्रुटि रही न किसी गुण की जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

समय पै घन नीर दिया किये,
स्वजन के सम काम किया किये।
कृषि यथेष्ट सदैव हुई जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सब प्रकार परस्पर प्रीति थी,
विगत भीति सु-शासन नीति थी।
लख पड़ी न कुरीति कहीं जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुन पड़ी न कहीं छल-छिद्रता,
कर सकी न प्रवेश दरिद्रता।
डर किसी रिपु का न रहा जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

विदित है जिसकी वर वीरता,
निरुपमेय रही ध्रुव-धीरता।
सब समृद्ध, स्वतन्त्र रहे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

रति रही सब की निज धर्म्म में,
मति रही सब काल सुकर्म्म में।
गति रही श्रुतिपद्धति में जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

ऋषि तथा मुनि मङ्गल-धाम थे,
तप जहाँ करते अविराम थे।
प्रचुर पुण्य तपोवन थे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

हवन-अग्नि जहाँ न रुकी कभी,
श्रुति-पुराण-सुधा न चुकी कभी।
सुकृत का अति सञ्चय था जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुगुण शीलवती कुलकामिनी,
सहज थीं सब सत्पथगामिनी।
तनिक भी कुविचार न था जहाँ
अब हरे ! वह भारत है कहा ?

रुदन-नीर जहाँ न कभी बहा,
श्रवण-गोचर गान सदा रहा।
सतत उत्सव थे रहते जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

जगत ने जिसके पद थे छुए,
सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ-कला सब थीं जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

गुण कहाँ तक यों उसके कहें ?
उचित है अब तो चुप हो रहें ।
सुख-कथा दुखदायक है यहाँ !
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

ब्रह्मचर्य्य का अभाव

"रस बिना कविता वृथा है" ठीक है यह बात;
पर किसे भीषण कथा रस-पूर्ण होगी ज्ञात ?
ब्रह्मचर्य्य-व्रत बिना है जो हमारा हाल,
मित्र, उसका चित्र-दर्शन है बड़ा विकराल !

बढ़ रहे अब क्यों निरन्तर नित्य नूतन रोग ?
क्यों न होते पूर्व के-से शक्तिशाली लोग ?
सर्वथा स्वल्पायु होकर घट रहे क्यों आर्य्य ?
पूर्वजों के तुल्य क्यों होते न हम से कार्य्य ?

एक उत्तर है यहाँ पर—'ब्रह्मचर्य्याभाव',
कर रहा घुस कर यही घर घर भयङ्कर घाव !
वीर्य्य बल का मूल है, संसार में जो सार;
ब्रह्मचर्य्याश्रम बिना उसका कहाँ आधार ?

ब्रह्मचर्य्याभाव है जब, वीर्य्य का क्या काम ?
वीर्य्य जब तनु में नहीं, बल का कहाँ फिर नाम ?
बल नहीं जब देह में, हों क्यों न नाना रोग ?
रोग-युक्त शरीर कै दिन भोग सकता भोग ?

वीर्य्य दैहिक शक्ति का ही है नहीं आगार,
मानसिक बल-बुद्धि का भी है यही आधार !
कुछ विचार किया जहाँ, मस्तक हुआ सविकार !
इस दशा में किस तरह हो ज्ञान का विस्तार ?

एक वे हैं, कर रहे जो अद्भुताविष्कार;
एक हम हैं, खोल बैठे मूर्खता का द्वार !
वीर्य्य-बल-सम्पन्न हैं वे, हम विपन्न, अशक्त;
भेद हम में और उनमें क्यों न हो फिर व्यक्त ?

वीर्य्य से ही धीरता को धार सकते धीर,
वीर्य्य से ही वीरता को प्राप्त होते वीर।
वीर्य्य से ही भीष्म में थी आत्मशक्ति असीम,
वीर्य्य से ही हाथियों को फेंकते थे भीम ॥

पुत्र ने माँ का अभी छोड़ा नहीं पय-पान,
पौत्र-दर्शन की हमें इच्छा हुई बलवान !
स्वल्प वय में ही तनय का कर दिया बस ब्याह,
आह ! इस वात्सल्य की भी है भला कुछ थाह !!!

वीर्य्य-रक्षा का जिन्हें मिलता न अवसर हाय !
क्यों न वे अल्पायु होकर नष्ट हों निरुपाय ?
प्राण से प्यारे सुतों का भूल कर परिणाम,—
कर रहे माता पिता ही शत्रुओं का काम !

वीर्य्य की परिपुष्टता से हैं स्वयं जो हीन,—
क्यों न हो सन्तान उनकी क्षीण और मलीन ?
कर कभी सकते न अङ्कुर बीज-गुण-विच्छेद;
ईश-नियमों में कभी होता न विनिमय-भेद ।

हाय ! मेधा शक्ति अब देती नहीं है साथ,
मक्खियाँ कैसे उड़ें, उठते नहीं हैं हाथ !
पूर्णयौवनकाल ही में हो गया कृश गात,
ब्रह्मचर्य्याभाव के हैं ये सभी उत्पात ॥

पूर्वजों के बुद्धि-बल की बात कहते आज,—
हाय ! क्यों हम पर न गिरती लाज रूपी गाज ?
आज भी जिनके अलौकिक कार्य्य हैं अविलीन,
क्या वही पूर्वज हमारे थे हमीं-से दीन ?

ब्रह्मचर्य्य-व्रत-सहित कर शास्त्रशीलन शुद्ध,
था प्रथम होना कहाँ तो पुष्ट और प्रबुद्ध ।
हा ! कहाँ अब जन्म से ही ये विषय के साज,
पतित होगा क्या हमारा और अधिक समाज ?

मनुज में मनुजत्व का है चिन्ह केवल शील,
ब्रह्मचर्य्य बिना हुई उस शील में भी ढील ।
आत्मसंयम-हेतु है बस ब्रह्मचर्य्य प्रधान,
ब्रह्मचर्य्य मनोदमन का है प्रथम सोपान ॥

वीर्य्य-रक्षा के बिना होते न अवयव पुष्ट,
क्यों न अवनति हो हमारी, क्यों न हों रुज रुष्ट ?
रोक सकती औषधें क्या यह अपार अनर्थ ?
नष्टमूल महीरुहों को सींचना है व्यर्थ ॥

नियम के प्रतिकूल जो करने गये हैं काम,—
होगया है नाश उनका, मिट गया है नाम ।
यदि न चेतेंगे, हमें भी क्यों न होगा दण्ड ?
प्रकृति-शासन में दया का है अभाव अखण्ड ॥

भाग्य पर करते वृथा हम रोष या सन्तोष,
समय के सिर थोपते हैं व्यर्थ ही सब दोष ।
कर्म्म-फल के भोग का गाता न कोई गीत,
समय क्या विपरीत है, बस हैं हमीं विपरीत ॥

हो उठे यदि फिर यहाँ पर ब्रह्मचर्य्य-स्फूर्ति,
तो हमारी हीनता की हो सहज ही पूर्ति ।
प्राप्त हो फिर से हमें वह बुद्धि और विवेक,—
जन्म लें घर घर यहाँ पर 'राममूर्ति' अनेक ॥

वीर्य्य-रक्षण जो हमें होगा न अब भी इष्ट,—
तो हमारा नाम ही रह जायगा अवशिष्ट ।
दीखती सर्वत्र है बलवान की ही चाह,
लोक में निर्बल जनों का है नहीं निर्वाह ॥

हा हरे ! हा दीनबन्धो ! हा विभो ! विश्वेश !
कौन हर सकता हमारा तुम बिना यह क्लेश ?
दीजिए दृढ़ मति दयामय, कीजिए मद-मुक्त;
हो सकें जिसमें पुनः हम पूर्व-गौरव-युक्त ॥

ब्राह्मणों से विनय

हे अग्रजन्म, भूदेव, पूज्यपद विप्रवरो !
इस निज विनीत जन की विनती पर ध्यान धरो।
क्या थे तुम, अब क्या हुए, विचारो, दया करो;
सब बातें सोच-विचार शीघ्र दुख-दोष हरो ॥

इस समय तुम्हारी दशा बहुत ही हीन हुई,
यह जाति तुम्हारी, देखो कैसी दीन हुई !
वह शक्ति अलौकिक सकल मूल से क्षीण हुई,
हा ! पूर्व काल की कथा आज सब लीन हुई ॥

अब वह तप-तेज विचित्र कहो, सब कहाँ गया ?
वह अनुपम ज्ञान पवित्र अहो ! सब कहाँ गया ?
भस्मावशेष पावक-सम तुम निःशक्त हुए,
वे धर्म्म-कर्म्म हा हन्त ! आज सब त्यक्त हुए !

देखो तो, तुम से जगत आज है क्या कहता;
लोकापवाद का सदा न किसको डर रहता ?
है किन्तु नहीं उसका भी अब कुछ ध्यान तुम्हें !
मानापमान का भी न रहा क्या ज्ञान तुम्हें ?

रच सकते थे जो सृष्टि दूसरी निज बल से,
कर सकते थे भव-भस्म अञ्जली के जल से !
हा ! द्वार द्वार फिरते हो अब तुम लोग वही,
है अहो ! तुम्हारे योग्य कहो, क्या काम यही ?

हे देव, तुम्हारी तनिक दृष्टि ही की गति से—
हो सकते थे कुछ अधिक रङ्क भी भूपति से।
हा ! वही आज तुम—हैं जो मद में सने हुए—
उद्धत धनियों के चाटुकार हो बने हुए !

तुम हो कर भी कुशपाणि विश्व के शासक थे,
वर विक्रम-बुद्धि-विकास, त्रास-दुख नाशक थे।
करते थे प्रकट प्रभाव नित्य तुम नये नये,
बोलो तो, अब वे कर्म्म तुम्हारे कहाँ गये ?

श्रीपरशुराम, कृप, द्रोण-तुल्य थे वीर तुम्हीं,
गौतम, वशिष्ठ की भाँति विदित थे धीर तुम्हीं।
सुरपति भी जिन से रण-सहायता लेते थे,—
वे नृप सिंहासन तुम्हें देख तज देते थे॥

हे याज्ञवल्क्य, व्यासादिक के कुल-वीर वरो,
भृगु, भरद्वाज, पाराशर मुनि के वंशधरो !
होकर सचेत जागो, निज कर्म्म प्रकाश करो,
मत नेत्र मूँद कर अपना आप विनाश करो॥

संसार देख कर जिन्हें चकित होता मन में,
करता है शिक्षा ग्रहण आत्महित-साधन में ।
वे ग्रन्थ तुम्हारे ही पुरखों के रचे हुए—
हैं अब भी अनुपम और नाश से बचे हुए ॥

तुम डूबे ब्रह्मानन्द नाम के थे रस में,
मन के समेत सम्पूर्ण इन्द्रियाँ थी बस में ।
पर हाय ! देख कर तुम्हें प्राण रोते अब हैं,
वे बातें स्वप्न-समान जान पड़ती सब हैं !

तत्वज्ञ-वृन्द सब जिसे भक्ति-वश है कहता,
सहचर-सा वह सर्वेश तुम्हारा था रहता ।
सोचो तो, कैसे वृत्त तुम्हारे बढ़े रहे,
आध्यात्मिक उन्नति-शिखरों पर तुम चढ़े रहे ॥

दिखला दो अब फिर वही पूर्व का मान यहाँ,
फैला दो फिर वह ज्ञान और विज्ञान यहाँ ।
सम्पूर्ण समाजों के प्रधान थे एक तुम्हीं,
सब विषयों का करते थे देव, विवेक तुम्हीं ॥

उन्नति के पीछे अवनति होती है जैसे, —
अवनति के पीछे उन्नति भी होती वैसे ।
अतएव उठो, अब लेकर उन्नति के मग को;
बतला दो अपनी शक्ति शीघ्र सारे जग को ॥

यदि अब भी तुम कर्तव्य न पालोगे अपना,—
तो रह जावेगा पूर्वकाल निश्चय सपना।
हिन्दू-समाज के दोष तुम्हीं पर आते हैं,
सब बातों में अगुआ ही पूछे जाते हैं॥

बैठे हैं

मत पूछो, कैसे बैठे हो ? खालो यहाँ खड़े बैठे हैं;
कोरी कुल की ऐंठ दिखा कर, घर में बने बड़े बैठे हैं।
बन्धु-बान्धवों से टुकड़ों पर श्वान-समान लड़े बैठे हैं;
घर घर भीख माँगने को हम पत्थर हुए अड़े बैठे हैं !
पके बेर के पेड़ों जैसे वारंवार झड़े बैठे हैं;
बन कर बिगड़ चुके हैं फिर भी सोते सदा पड़े बैठे हैं।
परवश विषयों के जालों में जड़ बन कर जकड़े बैठे हैं;
अपने भूत पूर्व गौरव पर फिर भी हम अकड़े बैठे हैं।
बने कूप मण्डूक, निरुद्यम, चौड़े में सकड़े बैठे हैं !
दो हाथों से एक दैव का पिण्ड मात्र पकड़े बैठे हैं !!

वृद्ध-विवाह

आज उदार बना है सूम ।

बूढ़े भारत के घर देखो, मची ब्याह की धूम ।।

सुख-सामग्री जुटती है,

भङ्ग भवानी घुटती है ।

आतिशबाज़ी छुटती है,

फुलवारी भी लुटती है ।।

मीठी ज्योनारों के मारे—

यारों की दम घुटती है ।

महफ़िल की सजीव शोभा भी रही राग में झूम !

आज उदार बना है सूम ।।

क्या रुपया, क्या थैली है,

बहू बड़ी अलबेली है ।

सुख से खाई-खेली है,

सब कुछ वही अकेली है ।

नाम सुनोगे ? सुनो, मौत है,

कैसी नई नवेली है !

स्वर्ग-सौख्य भोगो वर बाबा ! शय्या पर मुहँ चूम !

आज उदार बना है सूम ।।

चेतना

अरे भारत ! उठ, आँखें खोल,
उड़कर यन्त्रों से, खगोल में घूम रहा भूगोल !

अवसर तेरे लिए खड़ा है,
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है।
तेरा कर्मक्षेत्र बड़ा है,
पल पल है अनमोल ।
अरे भारत ! उठ, आखें खोल ॥

बहुत हुआ, अब क्या होना है,
रहा सहा भी क्या खोना है ?
तेरी मिट्टी में सोना है,
तू अपने को तोल।
अरे भारत ! उठ, आखें खोल ॥

दिखला कर भी अपनी माया,—
अब तक जो न जगत ने पाया;
देकर वही भाव मन भाया,
जीवन की जय बोल ।
अरे भारत ! उठ, आखें खोल ॥

तेरी ऐसी वसुन्धरा है—
जिस पर स्वयं स्वर्ग उतरा है।

अब भी भावुक भाव भरा है,
उठे कर्म्म-कल्लोल !
अरे भारत ! उठ,
आँखें खोल !

जगौनी

उठो हे भारत, हुआ प्रभात।
तजो यह तन्द्रा, जागो तात!

मिटी है कालनिशा इस वार,
हुआ है नवयुग का सञ्चार।
उठो, खोलो अब अपना द्वार,
प्रतीक्षा करता है संसार।
हृदय में कुछ तो करो विचार,
पड़े हो कब से पैर पसार!

करो अब और न अपना घात।
उठो, हे भारत, हुआ प्रभात॥

जगत को देकर शिक्षा-दान,
बने हो आप स्वयं अज्ञान!
सुनाकर मधुर मुक्ति का गान,
हुए हो सहसा मूक-समान।
सँभालो अब भी अपना मान,
सहारा देंगे श्री भगवान।

बनेगी फिर भी बिगड़ी बात।
उठो हे भारत, हुआ प्रभात॥

प्रेरणा

भारत ! न अब देरी लगा ।
तू जाग औरहमें जगा ॥

धर्म्म-ध्वजा ऊँची उड़ा,
निज पूर्वजों का जी जुड़ा;
आलस्य से पल्ला छुड़ा,
मत आप अपने को ठगा ।
भारत ! न अब देरी लगा ॥

मत भूल झूठे गर्व में,
मिल प्रेम के प्रिय पर्व में;
सर्वेश को पा सर्व में,
संसार भर का हो सगा ।
भारत ! न अब देरी लगा ॥

सच्चे समय का साथ दे,
परिवर्तनों में हाथ दे;
साहाय्य त्रिभुवन नाथ दे,

तू आप को प्रभु में पगा ।
भारत ! न अब देरी लगा ॥
प्राचीन भावासक्त हो,
सु-नवीन से न विरक्त हो;
तू भक्त किन्तु सशक्त हो,
जय लाभ कर, भय को भगा ।
भारत ! न अब देरी लगा ॥

स्वप्नोत्थित

सोया मैं, सदियों तक सोया !

ऐसा सोया हूँ कि आप ही मैं अपने से खोया !

किन्तु नींद जो मुझ को आई,

वह कुछ भी विश्रान्ति न लाई।

सौ स्वप्नों ने धूम मचाई,

अपनी अपनी छटा दिखाई।

चिन्ता, शोक, विषाद और भय सब ने घोर घटा छाई।

और रुधिर-धारा बरसाई॥

बहकर उसने मुझे बहाया और दबोच डुबोया !

सोया मैं, सदियों तक सोया !

उन स्वप्नों का ऐसा क्रम था—

बस, प्रत्यक्ष भाव का भ्रम था।

लूट-मार से नाकों दम था,

न मैं था न मेरा आश्रम था।

धरा धसकती, नभ फटता था, धुँआँधार दुस्तर तम था।

और दस्यु दल अति दुर्दम था॥

अब भी वही प्रहार निरन्तर सहता हूँ मैं गोया !
सोया मैं, सदियों तक सोया !
पर अब आँख खुली है मेरी,
और दृष्टि भी मैं ने फेरी ।
फिर भी है सब ओर अँधेरी,
प्रभा प्रकाशित हो अब तेरी ।
देखूँ मैं क्या गया, रहा क्या, न कर दयामय ! देरी ।
बजने दे फिर जीवन-भेरी ॥
किसी प्रकार भार यह मैंने जीवित रह कर ढोया ।
सोया मैं, सदियों तक सोया !
तेरी पुण्य-पताका फहरे,
मुक्त मुक्ति-पट उसका लहरे ।
आँधी उठे, घटा भी घहरे,
मेरी दृष्टि उसी पर ठहरे ।
लाख लाख कण्टक हों पथ में, चलूँ जिधर वह छहरे ।
भय विघ्नों से हृदय न हहरे ॥
पद पद पर उसका फल भोगे, जो जिसने हो बोया ।
सोया मैं, सदियों तक सोया !

———

अनिश्चय

विश्व, तुम्हारा भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

मैं ही हूँ वह जन-मनभाया ?
आर्य्य जाति ने जिसे बसाया ?
नाम 'भरत' से जिसने पाया ?
सचमुच ही क्या भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

वही भीष्म-सू का तो जल है,
जो कि भगीरथ-तप का फल है।
पर क्या मुझ में शोणित-बल है ?
नहीं, नहीं, एं, भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

अभी हिमालय तो सुस्थिर है,
वह मेरा ही ऊँचा सिर है।
किधर तपोवन-पुण्याजिर है ?
कैसे कहूँ कि भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

शेष सप्त पुरियाँ हैं, जब भी;
इन्द्रप्रस्थ, पुष्पपुर अब भी।
है क्या नहीं, न जाने, तब भी!
कोई कहे कि भारत हूँ मैं।
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

त्याग आज भी परम धर्म्म है,
आत्म भाव ही मुक्ति-मर्म्म है।
किन्तु योग मय कहाँ कर्म्म है?
किससे पूछूँ, भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

क्या यह साम-गान होता है?
सुनूँ, अरे, अवसर रोता है।
कहता है—"भारत सोता है!"
सुप्त कि जाग्रत भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता रत हूँ मैं!

धन्य किया है मुझे राम ने,
गण्य किया है घनश्याम ने।
काम बिगाड़ा किन्तु काम ने,
अब भी क्या वह भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

वह बोधिद्रुम गया कहाँ है ?
महावीर की दया कहाँ है ?
जो कुछ है, सब नया यहाँ है;
वही पुरातन भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

क्या मैं सोता ही था ? कब से ?
सदियाँ बीत गईं, क्या जब से ?
स्वप्न देखता था, हा ! तब से ?
फिर भी जीवित भारत हूँ मैं ?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

धरती, हिल कर नींद भगा दे,
वज्रनाद से व्योम, जगा दे !
दैव, और कुछ लाग लगा दे,
निश्चय करूँ कि भारत हूँ मैं।
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं !

चेतावनी

सौ सौ युगों की साधना भारत, न सो जावे कहीं ।
तेरी अमृत आराधना आरत न हो जावे कहीं ॥
वह तीव्र तप की धीरता, बल-वीर्य्य की वर वीरता,
धन,जन मयी गम्भीरता, तुझ को न रो जावे कहीं ॥
वह दुःख की दमनीयता, चिरकीर्ति की कमनीयता,
भय शोच की शमनीयता, सहसा न खो जावे कहीं ॥
तेरी प्रसिद्ध पुनीतता, वह शीलपूर्ण विनीतता,
पर बुद्धि की विपरीतता, अब विष न बो जावे कहीं ॥
वह उच्चता आचार की, विश्वस्तता व्यवहार की,
अनुरक्तता उपकार की, तेरी न धो जावे कहीं ॥
तेजस्विता वह त्याग की, उन्मुक्तता अनुराग की,
सुख-सम्पदा भव-भाग की, लुट कर न ढो जावे कहीं ॥
फिर सिद्ध हों शत सिद्धियाँ, लोटें पदों पर ऋद्धियाँ,
फिर हों यहाँ वे वृद्धियाँ, तू जाग जो जावे कहीं ॥

—

काल की चाल

भगवान जानें, काल की कैसी निराली चाल है !
हे काल ! तू ही तो बता, कैसा हमारा हाल है ?

है भेद ऐसा कौन जो संसार में तुझसे छिपा ?
फैला अभी तक हाय ! हम पर क्रूर, तेरा जाल है !
उत्कर्ष कह कर तू बता अपकर्ष भारतवर्ष का,
ऐं क्या कहा ? जो व्योम में था जा रहा पाताल है !
आकर अमर नररूप में करते विहार रहे जहाँ,
देखो कि जीना भी वहाँ अब हो रहा जंजाल है !
जिसने सिखाई थीं जगत को सर्व विद्याएँ कभी,
वह निज हिताहित-बोध तक में बाल से भी बाल है !
सब सिद्धियों का धाम, जो संसार का बस, सार था;
दारिद्र्य का बाहुल्य उसमें बढ़ रहा विकराल है !
उद्योग, उद्यम, धैर्य्य, साहस, सर्व गुण जिसमें रहे;
'दुर्भाग्य' कहकर पीटता वह आज अपना भाल है !
निज कर्म्म फल करता रहा जो भगवदर्पण भक्ति से,
स्वार्थानुरक्त तथापि अब वह दीखता कङ्काल है !

सिद्धान्त-"सर्वं खल्विदं ब्रह्म' प्रसिद्ध रहा जहाँ,
हा ! बन्धु-शोणित से वहाँ अब बन्धु का कर लाल है !
हा ! क्या कहें हम कौन हैं, जो हों कभी, अब कुछ नहीं;
अब तो जहाँ हम देखते हैं, दीख पड़ता काल है !

आत्म-स्मृति

किस लिए भारत, भला यह दीनता है ?
विमवजन्मा, क्यों भवोदासीनता है ?
कर्म्मयोगी, किस लिए तू दुःख भोगी ?
लक्ष्य तेरा मुक्ति है, स्वाधीनता है ॥
क्यों भला जीवन समर में पैर पीछे ?
आत्मबल रहते उचित क्या हीनता है ?
आपको भूला हुआ है आज तू क्यों ?
ज्ञात तेरी आत्मचिन्तालीनता है ॥
दिनकरोदय की दिशा का देश है तू,
क्यों निराशा-पूर्ण मोह मलीनता है ?
आञ्जनेय-समान निज बल ध्यान में ला,
सहज जिससे व्योम की उड्डीनता है ॥

होली

जो कुछ होनी थी, सब होली !
धूल उड़ी या रङ्ग उड़ा है,
हाथ रही अब कोरी झोली।
आँखों में सरसों फूली है,
सजी टेसुओं की है टोली।
पीली पड़ी अपत, भारत-भू,
फिर भी नहीं तनिक तू डोली !

श्रीरामनवमी

है अद्वितीय, अपूर्व, अनुपम दिन अलौकिक आज का,
सब ओर सुखमय दृश्य है शुभ सत्व गुण के साज का।
भू-भार-हारक ईश के अवतार का अवसर मिला,
ऋतुराज में क्या ही मनोहर पुण्य कुसुमाकर खिला ॥

श्रीरामनवमी नामकी है आज पावन तिथि वही,
जिस दिन स्वयं सर्वेश हरि ने स्वर्गमय की थी मही।
अवतीर्ण होकर आज ही रघुराज ने नरलोक में,
सन्मार्ग था दर्शित किया निज रूप के आलोक में ॥

उपदेश देने को हमें प्रभु ने मनुज-लीला रची,
शिक्षा न रामचरित्र से है एक भी बाहर बची।
करके कृपा सङ्कट मिटाया सुख सभी हमको दिये,
क्या क्या नहीं करता पिता सन्तान के हित के लिए ? ॥

किस भाँति करना चाहिए वह लोक-रञ्जन सर्वदा,
किस भाँति रखना चाहिए ध्रुव धर्म्म-मर्यादा सदा।
कर्तव्य कहते हैं किसे, है शील की सीमा कहाँ,
आती सहज ही ध्यान में हैं आज ये बातें यहाँ ॥

मुनि-यज्ञ-रक्षा की तथा अबला अहल्या तार दी,
ब्याही विदेह-सुता, पिता पर राज्यलक्ष्मी वार दी।
मारे निशाचर-गण अहा ! कण भी न छोड़ा पाप का,
हे राम ! हम भूलें कभी वह राम-राज्य न आपका ॥

फिर एक बार दयानिधे ! निज दिव्य दर्शन दीजिए,
इस रामनवमी नाम को भगवान ! सार्थक कीजिए।
फिर दुःख-पारावार से संसार का उद्धार हो,
दुष्कर्म का संहार हो, सद्धर्म का विस्तार हो ॥

जिन कारणों से आप का अवतार होता है हरे !
वे सब उपस्थित हो चुके अब भूरि-भीषणतामरे।
प्राबल्य पापों का बड़ा है, पुण्य पङ्गु हुआ पड़ा,
दुष्काल दानव-सा अड़ा है, रोग राक्षस-सा खड़ा ॥

अति तीक्ष्ण तापों से हमारे प्राण मानों जल रहे,
दुख-पूर्ण आँखों से अहो ! अविराम आँसू चल रहे।
विकराल जीवन भी हमें अब काल जैसा हो रहा,
विश्वेश ! देखो तो हमारा हाल कैसा हो रहा !!!

दुख, शोक, पापाचारता के नाट्य हम दिखला चुके,
आँसू न जिनको देख कर सहृदय जनों के हैं रुके।
हे लोक-नाटक-सूत्रधर ! अब और कुछ आज्ञा मिले,
लाखों करोड़ों खेल हैं मन की कली जिनसे खिले ॥

जन्माष्टमी

गगन में घुमड़े हैं घन घोर;
क्या अन्धेर अँधेरे के मिष छाया है सब ओर !
काली अर्द्ध यामिनी छाई,
आली भीति-भामिनी आई;
उसे दुरन्त दामिनी लाई;
चौंक उठे हैं चोर ।
वन्दी ये दम्पति बेचारे
बैठे हैं अब भी मन मारे;
अब तो हे संसार-सहारे !
करो कृपा की कोर ।
राजा जो सब का रक्षक है,
बना आज उलटा भक्षक है;
मार चुका शिशु तक तक्षक है
कंस नृशंस कठोर ।
सहसा बन्धन खुल जाते हैं,
वन्दी प्रभु-दर्शन पाते हैं;
मुक्ति मार्ग वे दिखलाते हैं
करके विश्व विभोर ।

है हमारी क्या दशा सुध भी न ली तुमने हरे ?
और देखा तक नहीं जन जी रहे हैं या मरे ।
बन सकी हम से न कुछ भी किन्तु तुम से क्या बनी ?
वचन देकर ही रहे, हो बात के ऐसे धनी !

आप आने को कहा था, किन्तु तुम आये कहाँ ?
प्रश्न है जीवन-मरण का हो चुका प्रकटित यहाँ ।
क्या तुम्हारे आगमन का समय अब भी दूर है ?
हाय तब तो देश का दुर्भाग्य ही भरपूर है !

आग लगने पर उचित है क्या प्रतीक्षा वृष्टि की,
यह धरा अधिकारिणी है पूर्ण करुणा दृष्टि की ।
नाथ इसकी ओर देखो और तुम रक्खो इसे,
देर करने पर बताओ फिर बचाओगे किसे ?

बस तुम्हारे ही भरोसे आज भी यह जी रही,
पाप पीड़ित ताप से चुपचाप आँसू पी रही ।
ज्ञान, गौरव, मान, धन, गुण, शील सब कुछ खो गया,
अन्त होना शेष है बस और सब कुछ हो गया ॥

यह दशा है इस तुम्हारी कर्म्मलीला भूमि की,
हाय ! कैसी गति हुई इस धर्म्म-शीला भूमि की ।
जा घिरी सौभाग्य-सीता दैन्य-सागर-पार है,
राग-रावण-वध विना सम्भव कहाँ उद्धार है ?

शक्ति दो भगवन् हमें कर्तव्य का पालन करें,
मनुज होकर हम न परवश पशु-समान जियें मरें।
विदित विजय-स्मृति तुम्हारी यह महामङ्गलमयी,
जटिल जीवन-युद्ध में कर दे हमें सत्वर जयी॥

पर्वमयी

भारतमाता, वृथा विलखती,
लख कर भी अपने को अब तू कभी नहीं है लखती।
तेरी एक एक तिथि सौ सौ पूर्वस्मृतियाँ रखती,
कभी न फूट फैलती यदि तू उनकी ओर निरखती।
यह राखी, विजया, दीवाली वह होली वह अखती,
पर्वमयी भी क्यों न हाय! तू प्रेम-सुधा रस चखती॥

नैराश्य-निवारण

क्यों तुम यों हताश होते हो ?
भारत हुआ श्मशान हाय ! यह कह कर क्यों रोते हो ?

तुम में इतना ज्ञान बना है,
उर में उसका ध्यान बना है,
यदि वह महाश्मशान बना है,
तो भी शिव का स्थान बना है !
शिव हैं जहाँ शक्ति भी होगीं, धीरज क्यों खोते हो ?
क्यों तुम यों हताश होते हो ?

उसमें शत स्मृतियाँ पाओगे,
पुरखों की स्मृतियाँ पाओगे,
वीरों की कृतियाँ पाओगे,
धीरों की धृतियाँ पाओगे,
उठो, सींचते हो जिसको क्यों उसे नहीं बोते हो ?
क्यों तुम यों हताश होते हो ?

भाषा का सन्देश

भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत ! कभी हताश न हो ।
बात क्या कि फिर अरुणोदय से
उज्वल भाग्याकाश न हो ॥

दिन खोटे क्यों न हों तुम्हारे किन्तु आप तुम खरे रहो,
साथ छोड़ दे क्यों न सफलता किन्तु धैर्य्य तुम धरे रहो ।
खाली हाथ हुए, हो जाओ, पर साहस से भरे रहो,
हरि के कर्म्मक्षेत्र ! हरे हो और सर्वदा हरे रहो ।
बात क्या कि फिर देश तुम्हारा
पूरा पुनर्विकाश न हो ।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत ! कभी हताश न हो ॥

मार्ग सूझता नहीं, न सूझे, किन्तु अटल तुम अड़े रहो,
आगे बढ़ना कठिन हुआ तो हटो न पीछे, खड़े रहो ।
विविध बन्धनों में जकड़े हो, रहो, किन्तु तुम कड़े रहो,
जी छोटा मत करो, बड़ों के वंशज हो तुम बड़े रहो ।

बात क्या कि फिर यहाँ तुम्हारा
पावन पूर्व प्रकाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत ! कभी हताश न हो ॥

तुम में हो या न हो शेष कुछ पर हो तो तुम आर्य्य अभी,
सूख गया तनु तक तो सूखे, रक्त-मांस हो या कि न भी।
अरे, हड्डियाँ तो शरीर में बनी हुई हैं वही अभी—
जिन से विश्रुत वज्र बना था, सिद्ध हुए सुर-कार्य्य सभी !
बात क्या कि फिर देश तुम्हारे
पाप-पतन का नाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत ! कभी निराश न हो ॥

नहीं रहे अधिकार तुम्हारे, न रहें, पर वे मिटे नहीं,
जन्म-सिद्ध अधिकार किसी के मिट सकते हैं भला कहीं ?
भूमि वहीं है, जहाँ निरन्तर सभी सिद्धियाँ सिद्ध रहीं,
जगत जानता है कि हुआ था आत्मबोध उत्पन्न वहीं ॥
बात क्या कि फिर छिन्न भिन्न यह
पराधीनता-पाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत ! कभी निराश न हो ॥

अपनी भाषा

करो अपनी भाषा पर प्यार ।
जिसके बिना मूक रहते तुम, रुकते सब व्यवहार ।।

जिसमें पुत्र पिता कहता है, पत्नी प्राणाधार,
और प्रकट करते हो जिसमें तुम निज निखिल विचार ।
बढ़ाओ बस उसका विस्तार ।
करो अपनी भाषा पर प्यार ।।

भाषा बिना व्यर्थ ही जाता ईश्वरीय भी ज्ञान,
सब दानों से बहुत बड़ा है ईश्वर का यह दान ।
असंख्यक हैं इसके उपकार ।
करो अपनी भाषा पर प्यार ।।

यही पूर्वजों का देती है तुमको ज्ञान-प्रसाद,
और तुम्हारा भी भविष्य को देगी शुभ संवाद ।
बनाओ इसे गले का हार ।
करो अपनी भाषा पर प्यार ।।

मेरी भाषा

मेरी भाषा में तोते भी राम राम जब कहते हैं,
मेरे रोम रोम में मानों सुधा-स्रोत तब बहते हैं।
सब कुछ छूट जाय मैं अपनी भाषा कभी न छोड़ूँगा,
वह मेरी माता है उससे नाता कैसे तोड़ूँगा॥
कहीं अकेला भी हूँगा मैं तो भी सोच न लाऊँगा,
अपनी भाषा में अपनों के गीत वहाँ भी गाऊँगा।
मुझे एक सङ्गिनी वहाँ भी अनायास मिल जावेगी,
मेरा साथ प्रतिध्वनि देगी कली कली खिल जावेगी॥
मेरा दुर्लभ देश आज यदि अवनति से आक्रान्त हुआ,
अन्धकार में मार्ग भूल कर भटक रहा है भ्रान्त हुआ।
तो भी भय की बात नहीं है भाषा पार लगावेगी,
अपने मधुर स्निग्ध, नाद से उन्नत भाव जगावेगी॥

महत्ता

धरती सब हमने छानी;
लेकर अपनी पवन पिया है देश देश का पानी।
कह कर अभी नई दुनिया जो है औरों ने जानी;
सप्रमाण है सिद्ध हमारी बस्ती वही पुरानी।
पुरातत्व में प्राण हमीं हैं, बतलाते हैं ज्ञानी;
कहो, हमारी पुण्य-पताका कहाँ नहीं फहरानी ?
किसी ओर भी रुके नहीं हम जब चलने की ठानी;
जल को भी थल बना चुके हैं, अब भी बची निशानी।
प्रथम सूर्य्य के साथ हमारी प्रभा सभी ने मानी;
प्राची के प्रकाश में ही तो सारी सृष्टि समानी।
जो ऊँची ऊँची इमारतें दीख रहीं लासानी,
आर्य्य-कला की समाधियाँ-सी हैं नवीनता-सानी।
आज भले ही ये सब बातें समझी जाय कहानी;
होकर ऋणी हमारे ही तो धनी हुए यूनानी।
खुदते हुए खँडहरों में से गूँज रही यह वाणी;
भारतजननी स्वयं सिद्ध है सब देशों की रानी॥

खुला द्वार

आजा हे संसार ! खुला है सोने के भारत का द्वार,
प्रहरी नहीं, किन्तु साक्षी है अटल हिमालय उच्च उदार।
किसका भय हो हमें, लोभ ही नहीं किसी का किसी प्रकार,
जो जिसको लेना हो, ले ले, अक्षय है अपना भाण्डार ॥
धन के लिए यहाँ जो आया उस लोलुप को है धिक्कार,
जीवन की शिक्षा देकर हम करते हैं सुमुक्ति-सञ्चार।
राम, कृष्ण, जिन, बुद्ध आदि के रखते हैं आदर्श अपार,
रज भी है इस पुण्य भूमि की सब के माथे का शृङ्गार ॥

प्रश्न

सिर क्या सगर्व फिर हम ऊँचा न कर सकेंगे ?
जो घाव हो गये हैं क्या अब न भर सकेंगे ?
इस भूमि पर कि जिस पर सुर भी कृतार्थ होते,
बन कर मनुज न फिर क्या अब हम विचर सकेंगे ?
वह त्याग जो प्रतिष्ठित था उच्च आत्म पद पर
खोकर उसे अहो ! क्या अब हम न धर सकेंगे ?
वह वीरता कि थी जो गम्भीर धीरता में
वर के समान हम क्या अब फिर न वर सकेंगे ?
उपकार जो कि पर को अपना बना चुका था
करके स्वदेश का क्या दुख हम न हर सकेंगे ?
उस मार्ग से कि जिससे पूर्वज गये हमारे
जाकर न मृत्यु से क्या अब हम न डर सकेंगे ?
भाण्डार शील के जो रहते सदा भरे थे
भर कर भवाब्धि को क्या अब हम न तर सकेंगे ?
पूछें किसे दयामय, तू ही हमें बता दे
फिर आपको अमर कर क्या हम न मर सकेंगे ?

प्रतिज्ञा

न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुहँ से कहेंगे हम॥

प्रकट होगी न क्यों आत्माभिलाषा है,
हमारी मातृभाषा राष्ट्र भाषा है।
समय के साथ उन्नति की शुभाषा है,
बने भागीरथी जो कर्मनाशा है।
बहक कर अब न विषयों में बहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुहँ कहेंगे हम॥

हमीं उस भाव-सागर को हिलोड़ेंगे,
करोड़ों रत्न पाकर भी बिलोड़ेंगे।
हलाहल देखकर भी मुँह न मोड़ेंगे,
पुरुष होकर कभी पौरुष न छोड़ेंगे।
अमृत पीकर अमर होकर रहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम॥

आर्य्य-भार्य्या

तू धन्य आर्य्या-भार्य्ये, तू प्रेम-राज्य-रानी !
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती;
बनता अहा ! अमृत है तेरा पुनीत पानी ॥
प्रिय की अधीनता वह परतन्त्रता नहीं है;
परिणाम में कि जिसके सन्मुक्ति है समानी।
उत्सर्ग आपको ही तू आप कर चुकी है;
त्रैलोक्य में नहीं है तेरे समान दानी ॥
हे देवि, घर हमारे मन्दिर बने तुझी से;
सब दुःख दूर करती सन्तोष पूर्ण वाणी।
शुचि-अग्निदेव साक्षी तेरे सतीत्व का है;
इतिहास कह रहा है तेरी करुण कहानी ॥
ममतामयी, कहीं भी समता मिली न तेरी;
भारत हुआ तुझी से भूस्वर्ग, लोकमानी।
अर्द्धाङ्गिनी बनाते कैसे तुझे न हिन्दू ?
शिव शक्ति-हीन शव हों जो छोड़ दे भवानी ॥

मातृ-मङ्गल

हे माताओ, आओ,
उठकर हमें उठाओ ॥

हमने तुम्हें बिसार दिया हो, हमको तुम न बिसारो माँ!
अवनत अपनी आर्य्य जाति को अब तुम उठो, उबारो माँ!
सुख देकर सुख पाओ।
हे माताओ, आओ ॥

हम मरते हैं, स्तन्य दान कर हमें बचाओ, क्षमता दो;
देखें कौन घृणा करता है, हमको तुम निज ममता दो।
करुणा-स्रोत बहाओ।
हे माताओ, आओ ॥

सीता का सतीत्व हो तुम में, सावित्री की शक्ति रहे;
सरस्वती की कला-कुशलता और उमा की भक्ति रहे।
गौरव के गुण गाओ।
हे माताओ, आओ ॥

घर की लक्ष्मी तुम्हीं हमारी, लालन पालन करो, उठो;
पुण्य भूमि भारत के सारे दुःख, शोक तुम हरो, उठो।

उसे न और भुलाओ।
हे माताओ, आओ॥

हम हताश हो चुके हार कर, विदुला बनकर शिक्षा दो;
नीच समझते हैं सब हमको, उच्च भाव की भिक्षा दो।
चलना हमें सिखाओ।
हे माताओ, आओ॥

हम रोगी हैं, अमृतकरों से हमें पथ्य का दान करो;
भ्रम में पड़कर भटक रहे हैं, हमें तथ्य का दान करो।
सच्चा मार्ग दिखाओ।
हे माताओ, आओ॥

दया, दान, दाक्षिण्य तुम्हीं से हो सकते हैं प्राप्त हमें;
आत्मत्याग, अनुराग तुम्हीं में मिलते हैं बस व्याप्त हमें।
जय की ज्योति जगाओ।
हे माताओ, आओ॥

स्वजनों की सेवा को हमको रीति बता दो, श्रान्त न हों;
पुण्यश्लोक पूर्वजों की कुलनीति बतादो, भ्रान्त न हों।
अपने गुण अपनाओ।
हे माताओ, आओ॥

भारत की लज्जा, सुशीलता दोनों की हो मूर्त्ति तुम्हीं;
इस जीवन की स्फूर्त्ति तुम्हीं हो, सुख, सम्पद की पूर्त्ति तुम्हीं।

अखिल अभाव मिटाओ ।
हे माताओ, आओ ॥

बीती रात, प्रभात हुआ है, बस, अब हमें जगादो तुम;
भीति भगा दो प्रीति पगा दो, बेड़ा पार लगा दो, तुम ।

हमें सपूत बनाओ ।
हे माताओ, आओ ॥

भारत-सन्तान

जय भारत, जिसको कीर्ति
सुरों ने गाई ।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई ॥

हाँ, गूँज उठे आकाश अनिल के द्वारा;
अगणित कण्ठों से बहे एक स्वर-धारा ।
कह दो, पुकार कर, सुने चराचर सारा;
है अब तक भी अस्तित्व अखण्ड हमारा ॥
अब तक भी है कुल-कीर्ति
हमारी छाई ।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई ॥

घन घोषित कर दे, उक्ति-भूमि भारत है;
कह दे समीर यह युक्तिभूमि भारत है ।
ध्वनि उठे धरा से, भुक्ति भूमि भारत है;
गूँजे अनन्त नभ, मुक्ति भूमि भारत है ॥

देवों को भी यह दिव्य
देश सुहाया।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई॥

अच्युत ने हमको आत्म भाव दिखलाया;
श्री राम-कृष्ण ने धर्म्म-कर्म्म सिखलाया।
जिन और बुद्ध ने दया-प्रेम दरसाया;
क्यों न हो हमें इस मातृभूमि की माया?
भगवत् को भी यह पुण्य-
भूमि मन भाई।
हम हैं भारत-सन्तान-
करोड़ों भाई॥

बस, इसी दिशा से प्रथम प्रकाश हुआ था;
शुभ साम-गान से मोह-विनाश हुआ था।
पृथ्वी तल का पशुभाव हताश हुआ था;
मानव-कुल में मनुजत्व विकास हुआ था॥
हम से जीवन की ज्योति
जगत ने पाई।
हम हैं भारत-सन्तान,
करोड़ों भाई॥

उत्पन्न मुक्ति भी हुई अहा! भारत में;
मनु ने स्वतन्त्र को सुखी कहा भारत में।
अधिकार-गर्व यों अटल रहा भारत में;
भाई भाई तक लड़े महाभारत में॥
शर-शय्या पर भी राज-
नीति समझाई।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई॥

सब बातों में हम रहे सदा आगे हैं;
विघ्नों के भय से कहीं नहीं भागे हैं।
सदियों तक सोये, किन्तु पुनः जागे हैं;
अब भी हम ने निज भाव नहीं त्यागे हैं॥
फिर बारी है संसार!
हमारी आई।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई॥

काले बादल

क्या कहा ?-काले ?-हाँ, हम श्वेत नहीं,
किन्तु क्या निर्मल-नीर-निकेत नहीं ?
बरसते हैं क्या साम्य समेत नहीं ?
हरे रखते हैं क्या सब खेत नहीं ?

हमें तुम भूल न जाओ, पहचानो;
आँख रखते हो तो अञ्जन जानो ।।

सफल करते हैं पद-विन्यास हमीं,
बुझाते हैं पृथ्वी की प्यास हमीं ।
उगाते हैं हे पशुओ ! घास हमीं,
दूर रह कर भी रहते पास हमीं ।

श्वेत बक-वृन्द हमीं में उड़ता है,
जगत का जलता जी भी जुड़ता है ।।

सरस हैं, पर हम शक्ति विहीन नहीं,
आर्द्र होकर भी क्या घन पीन नहीं ?
देख लो, दाता हैं हम, दीन नहीं;
समय के साथी किन्तु अधीन नहीं ।

भरी है हम में, नस नस में, बिजली,
किन्तु हम रखते हैं बस में बिजली ॥

फुहारें फूलों सी बरसादें हम,
और सूखे को भी सरसादें हम।
खिचें यदि तो दुकाल दरसादें हम,
बूँद के लिए तुम्हें तरसादें हम।

बनें जल भी थल जो हम तन जावें,
बना दें तो थल भी जल बन जावें ॥

विपुल ब्रह्माण्ड हमीं तो सेते हैं,
विश्व का विस्तृत बेड़ा खेते हैं।
हृदय में रवि-शशि को रख लेते हैं,
जुगनुओं तक को अवसर देते हैं।

वायु-वाहन पर व्योम-विहारी हैं,
धनुष-मिष सब रङ्गों के धारी हैं ॥

घेर सकता है कौन, स्वयं घिरते;
फिरा सकता है कौन, स्वयं फिरते।
भिरा सकता है कौन, स्वयं भिरते,
गरज सुन कर क्या गर्भ नहीं गिरते ?

प्रलय कर दें, यदि भृकुटि फिरादें हम;
उपल बरसादें, गाज गिरादें हम ।।

समझते हैं हम रोग श्वेतपन को,
रिक्त ही पाओगे तुम सितघन को ।
क्या करें लेकर उस उज्वल तन को–
न पावें जिसमें हम शुचि जीवन को ?

गर्व है काले होने का हमको,
मिला घनश्याम नाम पुरुषोत्तम को ।।

न होती छटा हमारी जो काली,
कहाँ से आती तो यह हरियाली ?
न सजती सौ सौ अन्नों से थाली,
न रहता कोई राग रङ्गवाली ।

करें यदि हम करुणा कर वृष्टि नहीं,
जान रक्खो, तो तुम क्या, सृष्टि नहीं ।।

तुम्हें जब मृगतृष्णा तक छलते हैं,
जलाशय मानों आप उबलते हैं ।
शिलाएँ फटती हैं, वन जलते हैं;
हमीं तब रक्षा करने चलते हैं ।

किसी का नीर नहीं जो पीते हैं,
हमीं से वे चातक भी जीते हैं ।।

हमीं तो घर की याद दिलाते हैं,
और बिछुड़ों को हमीं मिलाते हैं,
महा मुरझे भी सुमन खिलाते हैं,
स्वजीवन देकर तुम्हें जिलाते हैं।

बरसते हैं अपने को आप हमीं,
शान्त करते हैं भव-सन्ताप हमीं॥

चलें तो अन्ध आँधियाँ चला करें,
जलें तो आक, जवासे जला करें,
सु-फल पुण्य-क्षेत्रों में फला करें।
हमारी बूँदें सब का भला करें।

व्यर्थ के झगड़ों को मत सृष्टि करो,
इधर देखो, कुछ ऊँची दृष्टि करो॥

विजय-भेरी

जीवन-रण में फिर बजे विजय की भेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी॥
आत्मा का अक्षय भाव जगाया तू ने,
इस भाँति मृत्यु-भय मार भगाया तू ने।
है पुनर्जन्म का पता लगाया तू ने,
किस ज्ञेय तत्व का गीत न गाया तू ने।
चिरकाल चित्त से रही चेतना चेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी।
तू ने अनेक में एक भाव उपजाया,
सीमा में रह कर भी अ-सीम को पाया।
उस परा प्रकृति से पुरुष-मिलाप कराया,
पाकर यों परमानन्द मनाई माया।
पाती है तुझ में प्रकृति पूर्णता मेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी॥
शक, हूण, यवन इत्यादि कहाँ हैं अब वे,
आये जो तुझ में कौन कहे, कब कब वे।
तू मिला न उनमें, मिले तुझी में सब वे,
रख सके तुझे, दे गये आप को जब वे।

अपनाया सब को, पीठ न तू ने फेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी॥

हे देश, धर्म्म के लिए धर्म्म है तेरा;
फल ईश्वर का है और कर्म्म है तेरा।
चारित्र्य चर्म्म, विश्वास वर्म्म है तेरा,
इस जीवन में हो मुक्ति मर्म्म है तेरा।
तेरी आभा से मिटो अपार अँधेरो।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी॥

गिरि, मन्दिर, उपवन, विपिन, तपोवन तुझ में;
द्रुम, गुल्म, लता, फल, फूल, धान्य, धन तुझ में।
निर्झर, नद, नदियाँ, सिन्धु, सुशोभन तुझ में;
स्वर्णातप, सित चन्द्रिका, श्याम घन तुझ में।
तेरी धरती में धातु-रत्न की ढेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी॥

भारत की जय

न हमको कोई भी भय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

अलसता पर तन की जय हो,
चपलता पर मन की जय हो,
कृपणता पर धन की जय हो,
मरण पर जीवन की जय हो,
पवित्रात्मा का प्रत्यय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

हमारी असि न रुधिर-रत हो,
न कोई कभी हताहत हो,
शक्ति से शक्ति न अवनत हो,
भक्तिवश जगत एकमत हो,
वैरियों का वैर-क्षय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

भीति पर प्रीति विजय पावे,
रीति पर नीति विजय पावे,

द्रोह का काम न रह जावे,
मोह का नाम न रह जावे,
तुम्हारा निश्चल निश्चय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

कर्म्म को कभी न हम त्यागें,
धर्म्म में अनुरागें, पागें;
भुक्ति को छोड़ न हम भागें,
मुक्ति के लिए सदा जागें,
हृदय निर्मल निस्संशय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

देह तक के हम दानी हों,
मनुजता के अभिमानी हों,
सभी तत्वों के ज्ञानी हों,
तुम्हारे सच्चे ध्यानी हों,
त्याग के हित ही सञ्चय हो,
दयामय, भारत की जय हो॥

रहे कटि कसी पुण्य-पथ में,
बढ़े उद्योग मनोरथ में,
न हठ हो कभी यथायथ में,
शान्ति इति में हो सुख अथ में,

स्वदेश-सङ्गीत

सर्व संसार सदाशय हो,
दयामय, भारत की जय हो ।।

वृत्तियाँ बनी रहें बस में,
न विष मिलने पावे रस में,
बहे शुचि शोणित नस नस में,
कमी हो कभी न साहस में,
आप अपना ही आश्रय हो ।
दयामय, भारत की जय हो ।।

सफलता मिले परिश्रम में,
न बाधा हो कार्य्य-क्रम में,
भरा उत्साह रहे हम में,
लगे हम रहें सदुद्यम में,
मही पर ही स्वर्गोदय हो ।
दयामय, भारत की जय हो ।।

———

भजन

भजो भारत को तन-मन से ।
बनो जड़ हाय ! न चेतन से ।।
करते हो किस इष्ट देव का आँख मूँद कर ध्यान ?
तीस कोटि लोगों में देखो तीस कोटि भगवान ।
मुक्ति होगी इस साधन से ।
भजो भारत को तन-मन से ।।
जिसके लिए सदैव ईश ने लिये आप अवतार,
ईश-भक्त क्या हो यदि उसका करो न तुम उपकार ।
पूछ लो किसी सुधी जन से ।
भजो भारत को तन मन से ।।
पद पद पर जो तीर्थ भूमि है, देती है जो अन्न,
जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो करो उसे सम्पन्न ।
नहीं तो क्या होगा धन से ?
भजो भारत को तन-मन से ।।
हो जावे अज्ञान-तिमिर का एक वार ही नाश,
और यहाँ घर घर में फिर से फैले वही प्रकाश ।
जियें सब नूतन जीवन से ।
भजो भारत को तन-मन से ।।

कर्तव्य

भावुक ! भरो भाव-रत्नों से,
भाषा के भाण्डार भरो ।
देर करो न देशवासी-गण,
अपनी उन्नति आप करो ॥
एक हृदय से, एक ईश का,
धरो, विविध विध ध्यान धरो ।
विश्व-प्रेम-रत, रोम रोम से—
गद्गद् निर्झर-सदृश झरो ॥
मन से, वाणी से, कर्म्मों से,
आधि, व्याधि, उपाधि हरो ।
अक्षय आत्मा के अधिकारी,
किसी विघ्न-भय से न डरो ॥
विचरो अपने पैरों के बल,
भुजबल से भव-सिन्धु तरो ।
जियो कर्म्म के लिए जगत में—
और धर्म्म के लिए मरो ॥

व्यापार

करो तुम मिलजुल कर व्यापार ।
देखो, होता है कि नहीं फिर भारत का उद्धार ॥
बहुत दिनों तक देख चुके हो दासपने का द्वार ।
अब अपना अवलम्ब आप लो, समझो उसका सार ॥
यह दारुण दारिद्र्य-दशा क्यों, क्यों यह हाहाकार ?
भिक्षा-वृत्ति नहीं कर सकती इस विपत्ति से पार ॥
भरते हो तुम अपने धन से औरों के भाण्डार !
ले जाता है लाभ तुम्हारा हँस हँस कर संसार ॥
भारतजननी के अञ्चल का अल्प नहीं विस्तार ।
बहती है अब भी उसमें से सरस सुधा की धार ॥
दूध बहुत है, पर हा ! मक्खन कौन करे तैयार ?
मथ लेते हैं उसे विदेशी छाँछ छोड़ कर छार !
अपने में स्वतन्त्र जीवन का कर देखो सञ्चार ।
नहीं रहेगी और हीनता होगा पुनः प्रसार ॥
औरों की उन्नति, निज दुर्गति सोचो वारंवार ।
उद्यम में ही रत्नाकर है खारा पारावार !

नूतन वर्ष

नूतन वर्ष !
आते हो ? स्वागत, आओ;
नूतन हर्ष,
नूतन आशाएँ लाओ।
हमें खिलाकर खिल जाओ ॥
तुम गत वर्ष !
जाते हो ? रोकें कैसे ?
हा ! हतवर्ष !
जाओ, नैश-स्वप्न जैसे !
निश्वासों में मिल जाओ ॥
जाने को नव वर्ष चला है,
और न आने को गत वर्ष।
भुक्ति-मुक्ति के लिए भला है,
आवागमनशील सङ्घर्ष ॥

———

नवयुग का स्वागत

आ, हे प्रकृति-हृदय के हार,
खुला हुआ है मेरा द्वार;

तेरा गन्ध
है निर्बन्ध,
तुझे याद है मुझसे अपना मूल-बीज-सम्बन्ध ?
मुझे याद है,
इसी लिए आनन्द और आह्लाद है।
स्वागत नवयुग तेरा, करता है मन मेरा,
आँधी और चक्करों को, जल की प्रबल टक्करों को,
और ईश ने जो कुछ और दिया,
सिर माथे पर जिसने उसे लिया,
वह—बूढ़े भारत का बेड़ा—तुझे क्यों न लेगा हे पार !
आ, हे प्रकृति-हृदय के हार !

तव साहित्य,
नव नव नित्य,
पश्चिम में भी अस्त नहीं है जिसका प्रतिमादित्य,

अति अनूप है,

तू उसका प्रत्यक्ष कल्पना-रूप है।

सच्चा स्वप्न सुकवि का, इन्द्रजाल-सा छवि का,

आवश्यकता जन जन की, जय है तेरे जीवन की;

आडम्बर में है तू पड़ा सही,

मिला रहा पर अम्बर और मही।

सहज सरलता पूर्वक ही मैं करता हूँ तेरा सत्कार।

आ, हे प्रकृति-हृदय के हार!

तू सुनवीन,

मैं प्राचीन,

दोनों का सम्मिलन प्रौढ़ता प्रकट करे स्वाधीन;

इसी युक्ति से

मिले मुक्ति से भुक्ति भुक्ति भी मुक्ति से;

नर ही फिर निर्जर हों, और अमर ही नर हों,

तेरी शक्ति लसे मुझमें, मेरी भक्ति बसे तुझ में,

जियें धर्म के ऊपर और मरें,

बनें उभय नर-देव, सुकर्म करें।

फिर संसार स्वर्ग हो सब का और स्वर्ग सब का संसार

आ, हे प्रकृति-हृदय के हार!

भौतिक शोध

आत्मिकबोध

दोनों दूर करें हिलमिल कर अन्तर्बाह्य विरोध;
मूढ़ लोग हैं,
करते जो विपरीत आज उद्योग हैं।
वह भी तेरे बल से, एक राज्य के छल से,
किन्तु आत्मरक्षा भी अब, करें कलह करके वे सब,
राज्य नहीं एकार्थ, प्रजार्थ बना,
सावधान! सुन रक्खें, स्वार्थमना;
उद्घोषित करता है तू भी बस, सब के समान अधिकार।
आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

तेरे हाव
मेरे भाव
शान्त करें धन-जन-सम्बन्धी वह विग्रह वर्ताव।
जहाँ लोभ है,
वहाँ पाप है और परस्पर क्षोभ है।
हो भर्तृत्व न पूरा, तो कर्तृत्व अधूरा,
घात जहाँ प्रतिघात वहाँ, दिन भी होगा रात जहाँ,
यह उत्तुङ्ग हिमालय खड़ा अभी,
पूछ, कहा था मैं ने आप कभी—
जीव एक है, ब्रह्म एक है, माया के अनेक व्यवहार!
आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

साहसहीन,

दुर्बल, दीन,

कभी नहीं हो सकते प्रभु के पुण्य-तत्व में लीन।

मुझे ज्ञात है,

'बलहीनेन न लभ्य' मन्त्र विख्यात है।

आखिर किसका डर है? आत्मा अविनश्वर है;

प्राप्ति सत्य, शिव सुन्दर की, व्याप्ति बनें जीवन भर की,

रहें कहीं हम ऊँचा सिर होगा,

कारागार कृष्ण-मन्दिर होगा।

शूली? वह ईशा की शोभा, प्रस्तुत हूँ मैं सभी प्रकार।

आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

अहोभाग्य

स्वागत करते हैं हम लोग—
अपने अहोभाग्य का, जिससे पाया यह संयोग।
कष्ट उठाकर भी कितने ही आप यहाँ पर आगये;
योगिजनों को भी अगम्य शुभ धर्म्म आज हम पागये;
पावें शक्ति भक्ति का भोग।
स्वागत करते हैं हम लोग॥
आप अतिथियों की पद-रज का अञ्जन आज लगायँगे,
मञ्जु मातृभाषा की बाँकी झाँकी हम भी पायँगे;
मिट जावेंगे मन के रोग।
स्वागत करते हैं हम लोग॥
इस अनुपम अवसर पर मन में उठते अगणित भाव हैं,
पर वे भाषा बिना कहीं क्या पा सकते प्रस्ताव हैं?
करिये उसका आप प्रयोग।
स्वागत करते हैं हम लोग॥
सत्याग्रह-संग्राम-विजेता नेता अपना आज है,
जिसके सिक्के ने हिन्दी की रक्खी अब भी लाज है;
विफल नहीं होते उद्योग।
स्वागत करते हैं हम लोग॥

छूत

श्री कबीर, रैदास कौन थे, सोचो बारंबार;
उनसे कौन घृणा करता है, जिन पर प्रभु का प्यार।
शुद्धाचार, विचार, चाहिए और सत्य व्यवहार;
धारण करो साधुता, लेगा पद-रज तक संसार॥
पूतकर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत;
छूत बुरी है, अहोभाग्य है यदि हम हुए अछूत॥

अछूत

हम अछूत जब तक हिन्दू हैं,
अचरज है अब तक हिन्दू हैं !
मुसलमान, ईसाई हैं तो
देखें फिर कब तक हिन्दू हैं ।

सत्याग्रह

हुई आग भी हिम की धारा !
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
राजा और पिता, दोनों ने, उसका किया विरोध,
हेतु था हरे ! तुम्हारा बोध;
किन्तु न करता था वह मन में कभी किसी पर क्रोध,
कि निष्क्रिय था उसका प्रतिरोध;
हठ कर भी वह कभी न हारा ।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
उसके लिए किये राजा ने निर्मित नव नव दण्ड,
एक से एक अपूर्व प्रचण्ड;
पर मद-मलिन-गण्ड-गज-हित वे सिद्ध हुए एरण्ड,
प्रेम था उसका अतुल-अखण्ड;
क्या कर सका पिता बेचारा ?
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
छोड़े गये क्रोध कर उस पर मतवाले मातङ्ग,
औरबहु विषधर भीम भुजङ्ग;

गये जलाये और डुबाये उसके कोमल अङ्ग,
किन्तु प्रण हुआ न उसका भङ्ग !
सङ्कट उलटा हुआ सहारा !
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
बालक ही तो था वह, उसका था सुकुमार शरीर,
किन्तु था हृदय धुरन्धर धीर;
वैररहित था विश्व-बन्धु वह सहनशील, व्रत-वीर;
तुम्हारा नामोच्चारक कीर;
वैरी भी था उसका प्यारा ।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
"बाल्य हो कि वार्द्धक्य कि यौवन, हैं तीनों ही काल,
जन्म है धूर्त मरण की चाल;
करो साधना, शुभाराधना, तोड़ो बन्धन-जाल ।
सुनो हे बढ़ते वय के बाल !"
गिरि पर चढ़ वह यही पुकारा ।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
किया आत्म-बल से पशु-बल का निग्रह अपने आप,
बिठा दी क्रूरों पर भी छाप;
प्रेम-सहित, आतङ्क-रहित था उसका प्रबल प्रताप,
पुण्य है पुण्य, पाप है पाप;
कभी, किसी का, चला न चारा ।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥

राज-द्रोही, कुल-कुठार भी, कहा गया वह भक्त,
स्वयं था जीवन-मुक्त, विरक्त;
होकर भी अव्यक्त हुए थे उसके हित तुम व्यक्त,
कि था वह तुम में ही आसक्त;
सब में उसने तुम्हें निहारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा॥
देखा गया न उसके मुहँ पर कभी विकार, विषाद,
इसी से नाम पड़ा—"प्रह्लाद"
सुना गया वह हमें तुम्हारा भक्ति-भरा संवाद,
करें हम तुम्हें कि उसको याद ?
पथ-प्रदर्शक वही हमारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा॥

स्वराज्य

जो पर-पदार्थ के इच्छुक हैं,
वे चोर नहीं तो भिक्षुक हैं ।
हम को तो 'स्व' पद-विहीन कहीं
है स्वयं राज्य भी इष्ट नहीं ॥

अफ़्रीका प्रवासी भारतवासी

(१)

दीन हैं, हम किन्तु रखते मान हैं;
भव्य भारतवर्ष को सन्तान हैं।
हाँ, वही भारत हमारा देश है—
शेष जिसके आज भी कुछ गान हैं।
कर्मकर हैं, पर किसी से कम नहीं;
सब नरों के स्वत्व एक समान हैं।
न्याय से अधिकार अपना चाहते;
कब किसीसे, माँगते हम दान हैं॥

(२)

भेद मानों रंग का तो भ्रान्त हो,
तुम महामति भंग के दृष्टान्त हो;
रक्त तुममें लाल जो हममें वही;
व्यर्थ ही क्यों भेद-भावाक्रान्त हो!
जान रक्खो अब भलाई है तभी—
जब कि हम तो शान्त हों तुम क्षान्त हो।
अन्तरङ्ग अभिन्नता ही सिद्ध है,
बाह्य दर्शन में वृथा क्यों भ्रान्त हो॥

(३)

नीचता का भी भला कुछ पार है !
क्या तुम्हारे ही लिए संसार है ?
तुम हमारे देश को लूटा करो—
पर यहाँ आना हमारा भार है !
दम्भ दिखलाओ न सत्ता का हमें,
सत्य पर कितना तुम्हें अधिकार है।
हैं मनुज हम भी इसे भूलो नहीं;
कुछ हमारा भी यहाँ अधिकार है ॥

(४)

वीर बोथा ! व्यर्थ अत्याचार है,
सत्य का किससे हुआ प्रतिकार है ?
म्यान कर लो खड्ग अपना, शान्त हो;
ज्ञात हमको खूब उसकी धार है।
ट्रांसवाली युद्ध में हम थे न क्या ?
क्या तुम्हें भी याद वह व्यापार है ?
सामना है आज न्यायान्याय का;
और जय का हेतु जगदाधार है ॥

(५)

यह न समझो तुम कि हम डर जायँगे,
प्राप्य अपना छोड़कर घर जायँगे।
चित्त में यह ठान हमने है लिया—
मोद पाकर मान पर मर जायँगे।
दण्ड-धाराएँ बहाओ तुम बड़ी,
धीरता से हम उन्हें तर जायँगे।
रह नहीं सकते कभी फूटे बिना;
पाप के ज्यों ही के बड़े भर जायँगे॥

(६)

शत्रु मत समझो हमें अपना अहो!
मित्रता के साथ हिलमिल कर रहो।
हम मितव्यय-तुम अपव्यय-शील हो;
दोष इसमें क्या हमारा है कहो?
क्या यही कहना तुम्हारा धर्म है—
"हम सुखी हों, और तुम सब दुख सहो।
बात तो यह है कि गुरु समझो हमें,
और सञ्चय-बोध से वञ्चित न हो॥

(७)

मन न होगा रुद्ध कारागार से,
प्राण मर सकते भला किस मार से ?
देख ली हैं घोर नादिरशाहियाँ !
क्या डराते हो हमें तलवार से ?
मिट नृशंसों के गये हैं वंश भी,
पर हमारा कुछ न बिगड़ा वार से।
जो न दो साहाय्य हमको तुम यहाँ—
तो सताओ तो न यों अविचार से ॥

(८)

आर्य गान्धी ! देश का सन्देश सारा भेज दो;
शीघ्र भारतवर्ष को वर्णन हमारा भेज दो।
यह, हमारी ओर से लिख दो कि "प्यारे भाइयो—
बस हमें समवेदना का तुम सहारा भेज दो।
दृढ़ रहें यों ही यहाँ हम, ईश से अनुनय करो,
और शुभ-संवाद अपना तार द्वारा भेज दो।
विघ्न बाधाएँ हमारी सब यहाँ बह जायँगी,
जो हमें तुम एक अपनी अश्रुधारा भेज दो॥"

स्वराज्य की अभिलाषा

शत शत सम्राटों के स्वामी !
हे अनन्त ! हे अन्तर्यामी !
सुख का स्वप्न है कि आशा है यह स्वराज्य की अभिलाषा ?
किसने इसको उदित किया है ?
मुझे मन को मुदित किया है;
तुमने-केवल तुमने--प्रभुवर ! कहती है अन्तर्भाषा ॥
बैठ तुम्हारे साहस-रथ में,
हम न रुकेंगे अपने पथ में;
नाथ ! तुम्हारी इच्छाओं को बाधाएँ ही बल देंगी।
सत्य और विश्वास मिलेंगे,
काँटों में ही फूल खिलेंगे;
उद्योगों की कल्पलताएँ मनमानें शुभ फल देंगी ॥
काला रङ्ग न बाधक होगा,
गोरों का गुण साधक होगा;
एक हृदय का मिलन हमारा तीर्थराज सङ्गम होगा।
उन्नति में न रुकावट होगी,
होंगे योग्य उच्चपद-भोगी;

आत्मा की सच्ची समता से मनुज मनुज के सम होगा ॥
कभी न नैतिक घातें होंगी,
मुक्त मानसिक बातें होंगी;
विधि-विधान में फिर निजत्व का हमको अटल गर्व होगा।
पक्षपात, मतभेद न होगा,
ग्लानि न होगी, खेद न होगा;
न्याय-सभाओं में विचार का प्रकटित पुण्य पर्व होगा ॥
सुलभ सभी को होगी शिक्षा,
नहीं माँगनी होगी भिक्षा;
फिर सारे व्यापार हमारे अपने ही करगत होंगे।
उपनिवेश यमपुर न रहेंगे,
वहाँ न हम अपमान सहेंगे।
उनके वे उद्धत अधिवासी अपने आप प्रणत होंगे ॥
निम्नश्रेणी के अधिकारी,
रह न सकेंगे स्वेच्छाचारी;
जान-माल की रक्षा के मिस प्रजा न पिसने पावेगी।
शासक और शासितों में फिर—
चिर विश्वास रहेगा सुस्थिर;
समस्नेह से नियम-चक्र की धुरी न घिसने पावेगी ॥
हिंस्र जन्तु कुछ कर न सकेंगे,
हम उनसे यों डर न सकेंगे;
हरी-भरी खेती को सूकर फिर यों नहीं उजाड़ेंगे।

होंगे स्वयं शस्त्रधारी हम,
वीर भाव के अधिकारी हम;
निज साम्राज्य-सत्व-रक्षा का झंडा हम सब गाड़ेंगे ॥
परमात्मन्! ऐसा कब होगा?
जब होगा बस तब सब होगा;
ब्रिटिश जाति का गौरव होगा, उच्च हमारा सिर होगा।
वह इंग्लेंड और यह भारत,
होंगे एक भाव में परिणत;
दोनों के यश का दिगन्त में पुण्य पाठ फिर फिर होगा ॥

शीतल छाया

घूम फिरा चिरकाल मनोमृग,
देख मरीचिका रूपिणी माया !
जीवन हाय ! गँवाया वृथा,
पर पानी का एक भी बूँद न पाया।
सोच अरे, अब भी मन में थक,
हार चुका, मरने पर आया।
भागीरथी निकली जिनसे बस,
देंगे वही पद शीतल छाया ॥
कैसे मनुष्य कहो तुम हो यदि,
हो न तुम्हें निज देश की माया।
जन्म दिया जिसने तुम को फिर,
पाला, बराबर अन्न खिलाया।
नाक की नाक तुम्हारे लिए यहीं,
चन्द्र की चाँदी जो चाँदनी लाया।
और जो अन्त में देगा तुम्हें निज
गोद में शान्ति की शीतल छाया ॥
भारत, मेरे पुरातन भारत,
नूतन भाव से तू मन भाया।

भूतल छान चुके, तुझ-सा पर
देश कहीं पर दृष्टि न आया ।
भाव कि भाषा कि भेस सदा
अपना, अपना है, पराया, पराया ।
माता, पिता, सुत, जाया जहाँ,
बस है वहीं प्रेम की शीतल छाया ॥
वारिदों से अभिषेक करा,
नव भानुकरों से शरीर पुछाया ।
गन्ध मला मलयानिल से,
जगतीतल में यश सौरभ छाया ॥
शेष-फणों पर बैठ गया,
हरयाली ने आसन आप बिछाया ।
भारत, तू ने प्रदान की विश्व को
शान्त स्वराज्य की शीतल छाया ॥

गाँधी-गीत

(महात्मा गाँधी की भावना के अनुसार)

सुनो, सुनो, भारत-सन्तान !
हिन्दू, मुसलमान सब भाई निज-नवीन जय गान !

हरी-भरी जिस पुण्य-भूमि पर बहती है गंगा की धार,
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम उस पर हिंसा करें कि प्यार ?
सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार,
हार मान कर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार !
नहीं मारने में, मरने में है विक्रम, यश मान !
सुनो, सुनो, भारत-संतान !

भय ही नहीं किसी का है जब, करें किसी पर हम क्यों क्रोध ?
जियें विरोधी भी, विरोध ही पावेगा हम से परिशोध !
अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध;
प्रतिपक्षी भी, रण में, हमसे पावें, प्रेम, प्रसाद, प्रबोध !
रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है वीभत्स-विधान !
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान !

जब कि मुक्ति के अधिकारी हैं, रह सकते हम नहीं अधीन,
अमर आत्मबल के आगे क्या पशुबल हो सकता है पीन ?

सत्त्व हमारे हैं समान जब रहें कहो, फिर हम क्यों दीन ?
कर, पद, मन, मस्तक, दृग रहते सोचो हम हैं किससे हीन ?
होगा, होगा, निश्चय होगा, नित्य नया उत्थान !
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान !

ओ बारडोली !

ओ, विश्वस्त बारडोली, ओ,
भारत की 'थर्मापोली।'
नहीं, नहीं, फिर भी सशस्त्र थी,
ग्रीक सैनिकों की टोली।
'हल्दी घाटी' के रण की भी,
वही पूर्व-परिपाटी थी।
बढ़ बढ़ कर वैरी की सेना,
वीर-वरों ने काटी थी॥
पर तू है निःशस्त्र तपस्विनि,
फिर कैसे समता होगी ?
उपमा आप बनेगी तू यदि—
क्षोणी में क्षमता होगी।
लोहे को शनि-दान मान कर,
तूने स्वीकृत किया नहीं।
बुड्ढों का अवलम्ब जानकर,
लकड़ी को भी लिया नहीं॥
उठी नहीं तू कि जो बुरा है,
उसे नष्ट कर देने को।
तुली हुई है किन्तु बुरे को,
आज भला कर लेने को।

शुभे, सफलता दें तुझको हरि,
यही प्रार्थना है मेरी ।
स्वयं सिद्धि से भी बढ़ कर है,
साधु साधना यह तेरी ॥
फिर भी अपनी शक्ति तोल तू,
और विपक्षी का बल भी।
सङ्गीनें, मेशीन गनें, बम,
और उधर है कौशल भी।
न हो विजय का निश्चय जिनको,
साक्षी हो कर हट जावें।
बढ़ कर पग न हटें फिर पीछे,
चाहे सिर भी कट जावें।
करती है कानून-भङ्ग तू,
पर कैसे कानून भला ?
ऐसे, न्याय न्याय कह कर जो,
यहाँ फाँसते रहे गला ?
खौल उठेगा खून न किसका,
पीडन और प्रहारों से ?
संयम तुझे दिखाना है पर,
निज विनीत व्यवहारों से ?
आज महात्मा-द्वारा तूने,
आत्मा का बल जाना है।

परमात्मा ने दिया जिसे यह,
सत्याग्रह का बाना है।
भय दे सकता है क्या तुझको,
घोर आयुधों का घेरा ?
प्रतिपक्षी के लिये 'सहन' है,
'प्रहरण' से भीषण तेरा !
सावधान ! बाधायें तुझको,
व्रत से विचलित कर न सकें।
झेले जायँ वार हँस हँस कर,
छकें विपक्षी और थकें !
शोणित चाहें तो इतना लें,
हिंसक उसमें डूब उठें।
घृणा करें अपने ऊपर वे,
और आप ही ऊब उठें॥
सूरत में ही कोठी पहले,
नौकरशाही ने खोली।
सूरत से ही चली हटाने,
अब तू उसे बारडोली !
पर सङ्गम गोरों से अपना,
गङ्गा-यमुना-तुल्य रहे।
दोनों के भीतर समता की,
सरस्वती का स्रोत-बहे॥

जय बोल

खुली है कूट-नीति की पोल;
महात्मा गाँधी की जय बोल !

नया पन्ना पलटे इतिहास,
हुआ है नूतन वीर्य-विकास ।
विश्व, तू ले सुख से निःश्वास,
तुझे हम देते हैं विश्वास ।
आत्म-बल धारण कर अनमोल;
महात्मा गाँधी की जय बोल !

देख कर वैर, विरोध, विनाश,
पड़ गया है नीला आकाश !
किन्तु अब पशु-बल हुआ हताश,
कटेगा पराधीनता-पाश ।
उठा ईश्वर का आसन डोल
महात्मा गाँधी की जय बोल !

विचित्र संग्राम

अस्थिर किया टोप वालों को
गान्धी-टोपी वालों ने ।
शस्त्र बिना संग्राम किया है
इन माई के लालों ने ।
अपने निश्चय पर ये दृढ़ हैं,
मारो, पीटो, बन्द करो !
अजब बाँकपन दिखलाया है
इनकी सीधी चालों ने ।
यहाँ जमाई है अपनी जड़,
पश्चिम के जिन पौधों ने ।
असहयोग के फल उपजाये,
उनकी ऊँची डालों ने ।
मैंचेस्टर में बनी कभी की,
सोने की दीवारें हैं ।
हम नंगों की लज्जा रक्खी,
है मकड़ी के जालों ने ।
गाढ़ा आड़े हुआ, नहीं तो,
हमें फँसाये रखने को ।

रंग रंग के जाल बुने हैं,
मेशीनों की मालों ने।
अपने को भी भूल गये हम,
स्वप्न देखकर औरों के।
ऐसा रंग जमाया हम पर,
उनके मद के प्यालों ने।
जीते रहे पूर्वजों के ही,
पुण्यों से ज्यों त्यों कर के।
दास्य, दैन्य, दुर्भिक्ष दिये हैं,
हमें अनेकों सालों ने।
देना पड़े रक्त भी चाहे,
पर अपना पानी रखना।
मर कर भी पानी भर रक्खा,
पशुओं तक की खालों ने!
वीर धीरता से करते हैं,
सदा सामना विघ्नों का।
जकड़ा सभी जातियों को है,
जीवन के जञ्जालों ने।
टाला किये बराबर ही वे,
कोरी बातें कह कह कर।
बातें समझी हैं अब उनको
भूले भोले-भालों ने।

कच्चा हमें समझते हैं वे,
अब भी अपने शासन में ।
पका कलेजा यहाँ, पकाया,
अपने का इन बालों ने ।
उनसे अल्प योग्यता हमने,
नहीं दिखाई अवसर पर ।
फिर भी वञ्चित किया हमें है,
केवल काले भालों ने ।
भय में सच्चा प्रेम कहाँ है ?
प्रेम नहीं तो क्षेम कहाँ ?
वश कर पाया कहाँ प्रजा को,
पशु-बल से भूपालों ने ?
धारण किया स्वयं सेवा व्रत,
भारत के हित आज अहा !
सब ने, वृद्धों ने, युवकों ने,
वनिताओं ने, बालों ने ।
कहीं आज तक स्वतन्त्रता का,
रंग उड़ाये उड़ा नहीं ।
धुआँ उड़ाया है अपना हो,
बन्दूकों की नालों ने ।
कभी बन्द कर पाया है क्या
मधुर मुक्ति के भावों को ।

जेलों की उन दीवारों ने—
जंजीरों ने, तालों ने ?
करता है जो काल स्वयं ही,
उस से अधिक किसी जन का
क्या कर लिया मशीनगनों ने,
संगीनों ने, भालों ने ?
बनी रही जो कहीं स्वदेशी
तो दर्शक ही देखेंगे।
गोलों को भी उड़ा दिया है
यहाँ रुई के गालों ने ॥
कैसा भी दृढ़ रहे गर्व-गढ़,
स्वयं शीघ्र ढा जाता है।
किसके गौरव की रक्षा की,
कहो, ढोंग की ढालों ने ?
उदय-दिशा के रहने वाले
कब तक रहें अँधेरे में ?
जग को जगमग जगा दिया है,
अपने ही उजियालों ने।
गये दिनों में भी भारत ने,
निज गौरव दिखलाया है।
अब भी 'सत्याग्रह' सिखलाया—
है, गोरों को कालों ने ॥

मातृ-मूर्ति

जय जय भारत-भूमि-भवानी !

अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी ।

तेरा चन्द्र-वदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है;

मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है ।

हृदय हरा कर देता है यह अञ्चल तेरा धानी;

जय जय भारत-भूमि-भवानी !

उच्च-हृदय-हिमगिरि से तेरी गौरव-गङ्गा बहती है;

और, करुण-कालिन्दी हमको प्लावित करती रहती है ।

मौन मग्न हो रही देखकर सरस्वती-विधि वाणी;

जय जय भारत-भूमि-भवानी !

तेरे चित्र विचित्र विभूषण हैं फूलों के हारों के;

उन्नत-अम्बर-आतपत्र में रत्न जड़े हैं तारों के ।

केशों से मोती झरते हैं या मेघों से पानी ?

जय जय भारत-भूमि-भवानी !

वरद-हस्त हरता है तेरे शक्ति-शूल की सब शङ्का;

रत्नाकर-रसने, चरणों में अब भी पड़ी कनक लङ्का ।

सत्य-सिंह-वाहिनी बनी तू विश्व-पालिनी रानी;

जय जय भारत-भूमि-भवानी !

करके माँ, दिग्विजय जिन्होंने विदित विश्वजित याग किया,
फिर तेरा मृत्पात्र मात्र रख सारे धन का त्याग किया।
तेरे तनय हुए हैं ऐसे मानी, दानी, ज्ञानी—
जय जय भारत-भूमि-भवानी !
तेरा अतुल अतीत काल है आराधन के योग्य समर्थ;
वर्त्तमान साधन के हित है और भविष्य सिद्धि के अर्थ।
भुक्ति मुक्ति की युक्ति, हमें तू रख अपना अभिमानी;
जय जय भारत-भूमि-भवानी !

भारत का झण्डा

भारत का झण्डा फहरै।
छोर मुक्ति-पट का क्षोणी पर,
छाया करके छहरै॥
मुक्त गगन में, मुक्त पवन में,
इसको ऊँचा उड़ने दो।
पुण्य-भूमि के गत गौरव का,
जुड़ने दो, जी जुड़ने दो।
मान-मानसर का शतदल यह,
लहर लहर कर लहरै।
भारत का झण्डा फहरै॥

रक्तपात पर अड़ा नहीं यह,
दया-दण्ड में जड़ा हुआ।
खड़ा नहीं पशु-बल के ऊपर,
आत्म-शक्ति से बड़ा हुआ।
इसको छोड़ कहाँ वह सच्ची,
विजय-वीरता ठहरै।
भारत का झण्डा फहरै॥

इसके नीचे अखिल जगत का,
होता है अद्भुत आह्वान !
कब है स्वार्थ मूल में इसके ?
है बस, त्याग और बलिदान ॥
ईर्षा, द्वेष, दम्भ, हिंसा का,
हृदय हार कर हहरै ।
भारत का झण्डा फहरै ॥

पूज्य पुनीत मातृ-मन्दिर का,
झण्डा क्या झुक सकता है ?
क्या मिथ्या भय देख सामने,
सत्याग्रह रुक सकता है ?
घहरै दिग-दिगन्त में अपनी
विजय दुन्दभी घहरै ।
भारत का झण्डा फहरै ।

वैदिक विनय

विभो, विनती है बारंबार,
धर्म्म कर्म्म पर अटल रहें हम,
बढ़ें विशुद्ध विचार।
ब्राह्मण व्रती शुभाचारी हों,
क्षत्रिय तेजोबलधारी हों,
वैश्य सदाशय व्यापारी हों,
शूद्र करें उपचार॥
युवक हमारे उपकारी हों,
रूप शील युत नर नारी हों,
पशु हों पुष्ट, धेनु प्यारी हों,
बहे दूध की धार॥
मेघ समय पर जल बरसावें,
लता-वृक्ष फल-फूल-बढ़ावें,
योग क्षेम जड़ जङ्गम पावें,
बढ़े विमल-विस्तार॥

श्रीमैथिलीशरण गुप्त लिखित

काव्य-ग्रन्थ
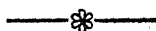
भारत-भारती

यह ग्रन्थ हिन्दी में अपने ढंग का पहला ही काव्य है । इसमें भारत के अतीत गौरव और वर्तमान पतन का बड़ा ही मर्म्म-स्पर्शी वर्णन है। हिन्दू विश्व-विद्यालय में यह पुस्तक बी० ए० के कोर्स में है। अष्टम-आवृत्ति । सुलभ संस्करण १) और राज संस्करण २)

जयद्रथ-वध

वीर और करुण-रस का यह अद्वितीय काव्य है। पञ्जाब की टैक्स्टबुक कमिटी से लाइब्रेरियों में रखने तथा मध्यप्रदेश की टैक्स्टबुक कमिटी से लाइब्रेरियों में रखने तथा इनाम में देने के लिये स्वीकृत है। पटना यूनिवर्सिटी के इन्ट्रेन्स और मध्यप्रदेश तथा बरार के नार्मल स्कूलों के कोर्स में भी सम्मिलित है। बारहवाँ संस्करण। मू०॥)

चन्द्रहास

यह एक पौराणिक नाटक है। मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। रङ्ग-मञ्च पर सफलता पूर्वक खेला जा चुका है । द्वितीय संस्करण। मूल्य ।||)

तिलोत्तमा

यह भी गद्य-पद्यात्मक पौराणिक नाटक है। इसमें देव-दानवों के युद्ध की कथा है। अनैक्य से दुर्जय दानवों का पतन किस प्रकार हुआ, यह देखने ही योग्य है। तृतीयावृत्ति। मूल्य ॥)

शकुन्तला

महाकवि कालिदास के "शकुन्तला" नाटक के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। यह पुस्तक कई जगह कोर्स में है। चतुर्थ संस्करण। मूल्य ।=)

रङ्ग में भङ्ग

यह एक ऐतिहासिक खण्डकाव्य है। करुण और वीर रस से परिपूर्ण है। आर्य्य-रमणी के सतीत्व की गाथा पढ़कर आपका मस्तक ऊँचा होगा; और मातृभूमि के ऊपर अपने को निछावर कर देने वाले वीर के वृत्तान्त से आपका हृदय भक्ति से गद्गद हो जायगा। इस पुस्तक का यह आठवाँ संस्करण है। मूल्य ।)

किसान

इस काव्य में कवि ने किसानों की दयनीय दशा का चित्र खींचा है। विदेशों में भारतीय कुलियों के साथ जैसा अन्याय-अत्याचार होता है, उसे पढ़कर आपकी आँखों से अश्रुपात होने लगेगा और हृदय आत्म-ग्लानि से भर जायगा। तीसरा संस्करण। मूल्य ।=)

पत्रावली

इसमें कविता-बद्ध ऐतिहासिक पत्र हैं। इसकी कविता देश-प्रेम के भावों से भरी हुई है। सभी पत्र ओज और माधुर्य्य से ओत-प्रोत हैं।। द्वितीय संस्करण। मूल्य ।-)

वैतालिक

भारत-वर्ष में जो नवीन अरुणोदय हो रहा है, उसीके सम्बन्ध में यह कवि का उद्बोधन-गीत है। इसकी कोमल-कान्त-पदावली आप को मुग्ध किये विना न रहेगी। मूल्य ।)

पञ्चवटी

यह काव्य रामायण के एक अंश को लेकर लिखा गया है। कवि ने इसमें जिस सौन्दर्य्य की सृष्टि की है, वह बहुत ही मनोमोहक है। यदि आपने अभी तक इस काव्य को नहीं पढ़ा है, तो इसे खरीद कर शीघ्र पढ़िए। पढ़कर आपको मालूम होगा कि आप अब तक वर्तमान हिन्दी-साहित्य के एक अनुपम रत्न से वञ्चित थे। मूल्य ।=)

अनघ

श्री मैथिलीशरण गुप्त लिखित रूपक-काव्य। भगवान् बुद्ध ने अपने पूर्व जन्म में जो ग्राम्य-सङ्गठन और नेतृत्व किया था इसमें उसका विशद-वर्णन है; जो हमें इस आधुनिक युग में भी बहुत कुछ सिखाकर आगे बढ़ा सकता है। इसका बहुल प्रचार हमारा बड़ा भारी हित-साधन कर सकता है। मूल्य ॥)

हमारे यहाँ के अन्यान्य काव्य-ग्रंथ

विरहिणी व्रजाङ्गना

बँगला के महाकवि मधुसूदन दत्त के "व्रजाङ्गना" नामक काव्य का यह सुन्दर पद्यानुवाद है। बार बार पढ़कर भी तृप्ति नहीं होती। इसके चार संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ।)

पलासी का युद्ध

महाकवि नवीनचन्द्र सेन के प्रसिद्ध बँगला काव्य का हिन्दी पद्यानुवाद। प्रसाद-गुण, ओज और माधुर्य्य से भरा हुआ यह काव्य, काव्य-प्रेमियों के बड़े आदर की वस्तु है। मूल्य १॥)

मौर्य्य-विजय

वीर रस पूर्ण खण्ड काव्य । इसमें दो हज़ार वर्ष पूर्व की भारत-वर्ष की एक गौरव-पूर्ण विजय का वर्णन है । पञ्चमावृत्ति । मूल्य ।)

अनाथ

यह भी एक खण्डकाव्य है । इसका कथानक करुणा-पूर्ण है । द्वितीयावृत्ति । मूल्य ।)

साधना

इसके लेखक राय श्रीकृष्णदासजी हिन्दीके उन उदीयमान सुलेखकों में से हैं जिनसे हिन्दी-साहित्य को बहुत कुछ आशा है । उनका यह गद्यकाव्य अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है । बहुत भाव-पूर्ण है । मूल्य १)

मेघदूत

कवि-कुल-गुरु श्री कालिदास के विख्यात "मेघदूत" काव्य का यह सरस हिन्दी-पद्यानुवाद पं० केशवप्रसादजी मिश्र ने किया है । मूल के भावों की रक्षा बड़ी योग्यता से की गई है । मूल्य ।)

सुमन

श्रद्धेय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी वर्तमान हिंदी के युगप्रवर्तक आचार्य्य हैं । यह उनकी फुटकर कविताओं का संग्रह है । रचना की उत्कृष्टता के विषय में लेखक का नाम ही यथेष्ट है । मूल्य १)

बँगला के महाकाव्य मेघनाद-वध का हिन्दी-पद्यानुवाद तथा गुप्तजी के अन्य कई काव्य भी छप रहे हैं । शीघ्र प्रकाशित होंगे।

पताः—

प्रबन्धक, साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)